हृदय के उद्‌गार - दयाल फ़कीर

भूमिका

संतों की शिक्षा अब तक गुप्त और संकेतों में ही चली आ रही थी. मैंने समयानुकूल इस शिक्षा में यह परिवर्तन किया कि इसे गुप्त तथा संकेत में न रख कर स्पष्ट वर्णन कर दिया.

दाता दयाल महर्षि शिवब्रतलाल ने आदेश दिया था - "फकीर! समय बदल जाएगा, धर्म-पंथ समाप्त हो जाएँगे, चोला छोड़ने से पहले शिक्षा में परिवर्तन कर जाना."

मेरे अनुभव में जो कुछ आया उसको कह सुनाया. किसी का अनुकरण नहीं किया और न निज स्वार्थ से काम किया. दाता दयाल ने जो कार्य मुझे सौंपा था उसको मैंने समाप्त कर दिया. जीवन के अंतिम दिवस हैं. मेरी हार्दिक इच्छा है कि संतमत की शिक्षा जिसको मैंने स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया है उसका प्रचार हो. इसके प्रचार से जगत का कल्याण होगा तथा परस्पर के ईर्ष्या-द्‌वेष समाप्त हो जाएँगे.

मेरा अपना मार्ग केवल निर्वाण या निवृत्ति का मार्ग है. मेरा कथन है प्रवृत्ति मार्ग के विचार से है क्योंकि जनता निवृत्ति मार्ग की अधिकारी नहीं है यद्‌यपि अब मुझे निवृत्ति व प्रवृत्ति दोनों कल्पित भासते हैं. इस समय जनता को मनुष्यता का मार्ग सरल व सुगम है.

जब तक तुम्हारी अंतिम अवस्था खामोशी की क्रियात्मक रूप से जीवन व्यतीत करने की न हो जाए तब तक सुमिरन, भजन, ध्यान, प्रेम, भक्ति और निष्काम कर्म को मत छोड़ो और सत्संग करते रहो, वरना मेरे लेखों द्‌वारा जो बुद्धिगत ज्ञान तुमको प्राप्त होगा उससे तुम गिरते रहोगे. बिना अंतरीय अनुभव ज्ञान के पुस्तकों का ज्ञान स्थाई नहीं होता

हृदय उद्‌गार

(प्रवचन परमसंत दयाल फकीर साहब)

(मस्ती की अवस्था में)

प्रार्थना

1. एक पतित जीवन फकीर का, रूप धार करता पुकारा
   ऐ परम तत्व दयाल, जगत के आधार
2. मैं हूँ कौन? क्या हूँ मैं ? चेतन का एक बुलबुला
   जिससे बना उसी की खोज में, जीवन दिया गुजार
3. समझता हूँ बहुत कुछ, कहता हूँ बहुत कुछ
   पर दर असल ऐ दाता पा न सका तेरा पार
4. जैसा बनाया वैसा कराया काम, कुदरत ने मुझसे
   इसलिए मुझे नहीं है, अपने कार्य कर्म का अहंकार
5. दौड़ दौड़ के दौड़ देखा, आखिर में थक गया हार
   सोच, समझ, विवेक अनुभव से, हो गया लाचार
6. खींच ले सब ज्ञान अनुभव, खींच ले बुद्धि मेरी
   दे शरन अब अपनी तू, भूलूँ यह संसार
7. जब तक है होश जीवन में, वर माँगूँ यही सदा
   दे अपनी ज़ाते पाक़ का, मुझे अपना सच्चा प्यार
8. कह नहीं सकता हूँ मैं, मैं कौन हूँ तू कौन है
   मगर तेरे होने से, कर नहीं सकता इन्कार
9. विश्वास है मुझे तेरा, तू आया बन दाता दयाल
   खेल खिलाया तूने ऐसा जिससे समझा तू है अपरंपार
10. शरणागतम्, शरणागतम् शरणागतम्
    हर तरफ़ से हट कर, आया शरन में मैं तुम्हार
11. भेंट सब कर्म अपने, तेरे करता हूँ दयाल
    मैंने न कुछ किया, और न कर सकता कोई कार
12. वह यहीं आकर, शान्ति मिलती है मुझे
    मौज तेरी कार्य तेरा, तेरा ही है सब संसार

सकाम कर्म और उसका फल

यह संसार कर्म क्षेत्र है. यहां जो भी आदमी आता है वह कोई न कोई कर्म करने के लिए विवश है. छोटे से लेकर बड़े तक कोई भी ऐसा न मिलेगा जो कर्म न करता हो. पीर पैग़म्बर, अवतार, संत, ऋषि-मुनि सबको कर्म करना पड़ा. जब इस कर्म की फिलॉसफी पर विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि कर्म दो प्रकार का है- (1) निष्काम (2) सकाम.
जिस काम के करने में किसी प्रकार की कोई कामना नहीं होती ऐसे कर्म को निष्काम कर्म कहते हैं. चूंकि उस काम के करने में मनुष्य अपनी कोई ग़र्ज़, वासना, इच्छा नहीं रखता इसलिये उस कर्म का फल भी उसे नहीं भोगना पड़ता. निष्काम कर्म को प्राणी मौज अधीन या स्वाभाविक समझकर करता रहता है.

सकाम कर्म वह कर्म हैं जिनको किसी वासना, किसी ध्येय को लेकर किया जाता है. जो काम दूसरों के हित के लिए किए जाते हैं वे शुभ कर्म हैं और जो पने हित और स्वार्थ के लिये किये जाते हैं मगर यदि उनकी पूर्ति में दूसरों का अहित होता है, दूसरों से राग-द्वेष-ईर्ष्या करना पड़ता है तो वे कर्म अशुभ हैं. जो जैसा कर्म करता है उसको वैसा ही फल भोगना पड़ता है.

कहा है–'अवश्यमेव भोगतव्यम् कृत कर्म शुभाशुभम.'

दान भी अगर तुम निष्काम भाव से नहीं देते तो उसका फल भी भोगने को संसार में आना पड़ेगा और तुम जन्म-मरण के चक्र से बच नहीं सकते.

इस कर्म फल के भोगने पर दाता दयाल (महर्षि शिव) का वह शब्द हैः-

शब्द

सब भोगें बारम्बार, अवश्य फल कर्म किये का ।
यह सोच समझ चित धार, मर्म जग जन्म जिये का ।।
सुर नर देवी देव महर्षि, और ब्रह्म अवतारा ।
अशुभ कर्म के फल से इनको, मिले नहीं छुटकारा ।।
एक जो कहिये राम महाप्रभु, पुरूषोत्तम मर्यादा ।
गुप्त घाट सरजू जल बूढ़े, रामायण सम्वादा ।।
दूजे कहिये कृष्ण विवेकी, सोलह कला के पूरे ।
यदु कुल नाश भील की गाँसी, भये मान मद चूरे ।।
तीजे युधिष्ठिर धर्मराज की, अकथ अपार कहानी ।
भाई भावजा संग गले हिम सो, सब कोई जानी ।।

चौथे वशिष्ठ महा मुनि ज्ञानी, देखा कुल का नासा ।
विश्वामित्र के हाथ पलट गया, ज्ञान योग का पासा ।।
पंचम दशरथ अवध नरेशा, श्रवण ऋषि को मारा ।
पुत्र वियोग प्राण को त्यागा, मिला न राम सहारा ।।
छटे इन्द्र की करनी समझो, श्राप बृहस्पति दीना ।
भग मय देव राज की काया, कर्म का फल यह लीना ।।
चन्द्र कलंकित काम वेग से, जाने सब संसारा ।
करम अटल है महाबली है, कोई कोई करे विचारा ।।
रावण बाली भरत जड़ ज्ञानी, ऋषि के सुत दुरवासा ।
कर्म किया तैसा फल पाया, अन्त में भये उदासा ।।
सुन प्रसंग चित अपना शोधो, सोधो मन कर्म बानी ।
शब्द योग कर जन्म बनाओ, राधास्वामी की सहदानी ।

राम मर्यादा पुरूषोतम कहलाते हैं. उस दृष्टि से जो कुछ उन्होंने किया, उस पर कुछ नहीं कहना है मगर उन्होंने दो काम सकाम भाव से किये – एक यह कि सुग्रीव को अपना मित्र बनाने के लिये बाली को वध किया. दूसरा यह कि मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाने के लिये उन्होंने अपनी स्त्री सीता को लोकलाज में पड़ कर एक धोबी के कहने पर निरपराध बनवास दे दिया, यद्यपि सीता की सत्यता की परीक्षा राम पहले ही ले चुके थे. इस सकाम कर्म का फल यह हुआ कि अन्तिम आयु में उनको उदासीनता आ गई और अपने भाइयों के साथ सरयू नदी में डूब मरे.

श्री कृष्ण ने पांडवों की विजय के हेतु महाभारत में राजनीतिक विचार से सकाम कर्म किया जिसका फल उनको भोगना पड़ा. उनका कुल परिवार नष्ट हो गया और वह स्वयं भील के हाथों वध किये गये.

मेरे कहने का अभिप्राय यह नहीं कि है कि राम या कृष्ण ने जो उपरोक्त काम किये वे अनुचित थे, परन्तु वे कार्य सकाम थे. वह प्रवृत्ति मार्ग के लिये किये गये थे. इस कारण वह भी उसके फल से वंचित नहीं रह सके.

युधिष्ठिर और उनके भाइयों ने भी राज्य पाने के लिये सकाम कर्म किया और राज्य जीत लिया. वे लोग उदासीन होकर द्रौपदी के साथ हिमालय पर्वत पर जाकर बर्फ में गले.

द्रौपदी सबसे पहले बर्फ में गिर कर मरी. अर्जुन ने धर्मराज से पूछा कि यह शरीर के साथ स्वर्ग में क्यों नहीं गई? धर्मराज ने उत्तर दिया कि तुमने इसको स्वयंवर में जीता था. इसका विवाह तुम से हुआ था. यद्यपि माता के कहने से वह हम पांचों की स्त्री हुई परन्तु वह तुम्हारा पक्ष करती थी जो सकाम था.

भीम को अपने गदाधारी पहलवान होने का अहंकार था. अतः सब लोग सकाम कर्म के कारण गिरते चले गये. केवल युधिष्ठिर देह के साथ स्वर्ग में गये जैसा कि शास्त्रों में लिखा है. उनके साथ एक कुत्ता था (जो उनका मन था) जब कहा गया कि कुत्ता स्वर्ग में नहीं जा सकता तो युधिष्ठिर ने भी जाने से इंकार किया और कहा कि अगर कुत्ता नहीं जायेगा तो मैं भी नहीं जाऊँगा. अतः कुत्ता भी उनके साथ गया.

युधिष्ठिर जब धर्मराज के दरबार में आये तो उनसे कहा गया कि आपने एक सकाम कर्म किया है. आप को दो-ढ़ाई घंटे नरक भोगना पड़ेगा, इसके बाद स्वर्ग भोगोगे. उन्होंने पूछा कि मैंने कौन-सा अशुभ कर्म किया है, तो उत्तर मिला कि द्रोणाचार्य आपको सत्यवादी समझते थे और आप पर विश्वास करते थे कि आप झूठ नहीं बोल सकते, मगर कृष्ण के कहने पर आपने कह दिया कि अश्वत्थामा मारा गया और धीरे से कहा कि आदमी या हाथी- 'नरो वा कुंजरो' हाथी कहने के समय कृष्ण ने जोर से शंख बजा दिया जिसके कारण अन्तिम शब्द सुनाई नहीं दिये. चूंकि कृष्ण ने अश्वत्थामा नामक हाथी को वध करवा दिया था इससे द्रोणाचार्य ने समझा कि अश्वत्थामा आदमी मारा गया जो असत्य था. इस कारण द्रोणाचार्य ने प्राण त्याग दिया, इसलिये आपको थोड़ी देर नरक भोगना पड़ेगा.

वशिष्ठ ने सकाम कर्म यह किया था कि उनके दिल में यह बात थी कि ब्रह्मऋषि उच्च अवस्था है और राजऋषि उस से नीची है. अतः वह इस इच्छा से अपने को ब्रह्मऋषि समझते थे और विश्वामित्र को राजऋषि समझते थे और विश्वामित्र को ब्रह्मऋषि कहने से इंकार करते थे. इसी कारण विश्वामित्र ने उनके लड़कों को मारकर उनके कुल का नाश कर दिया.

दशरथ ने सकाम कर्म यह किया था कि श्रवण ऋषि का वध किया था. यह सत्य है कि उन्होंने जानबूझ कर नहीं मारा था लेकिन तीर मारते समय उन्होंने विचार को परिपक्व करके तीर नहीं चलाया कि वह मनुष्य पर तीर चला रहे हैं अथवा हिरन पर. उन्होंने अनुमान कर लिया कि कोई हिरन पानी पी रहा है. जो व्यक्ति कोई काम अनुमान के अज्ञानवश करता है वह काम सकाम तथा अशुभ है. इस अशुभ काम का दंड उनको भोगना पड़ा और राम के विरह में प्राण त्यागना पड़ा.

पंचवटी में राम ने जब मारीच को हिरन समझ कर उसका वध करने के लिये तीर चलाया और जब तीर मारीच को प्राणघातक हुआ तो उसने लक्ष्मण का नाम धोखा देने के लिये पुकारा. जब सीता ने लक्ष्मण का नाम सुना तो उनसे कहा कि तुम्हारे भाई पर कोई आपत्ति आई हुई है तुमको पुकार रहे हैं. सीता की रक्षा के लिये राम ने लक्ष्मण को नियुक्त किया था और कह गये थे कि सीता को अकेली छोड़ कर कहीं मत जाना. राम की आज्ञा पालन करना लक्ष्मण अपना धर्म समझते थे. उनका हृदय शुद्ध था. सीता को माता के समान

समझते थे. उन्होंने जाने से इंकार किया तो सीता ने निर्दोष लक्ष्मण पर आक्षेप लगाकर कहा कि तुम्हारी नीयत शुद्ध नहीं है. चूंकि सीता का यह कार्य अशुभ था अतः रावण उनको छल कर लंका ले गया और राम ने उनको बनवास दिया और अन्त समय उनको धरती में समा जाना पड़ा. उनका पतिव्रत धर्म भी उनका कुछ सहायक नहीं हो सका.

इन्द्र, रावण और चन्द्रमा ने भी सकाम तथा अशुभ कार्य किये थे जिसका फल उनको भोगना पड़ा.

यह शब्द दाता दयाल ने उस समय लिखा था जब मैं एक बार उनके दरबार से उनको ताज लेकर आया था. उस समय सत्संग में कोई शब्द पढ़ा जा रहा था. जब दाता दयाल ने मुझको ताज लिये हुये देखा तो जो शब्द उस समय पढ़ा जा रहा था उसको उन्होंने अधूरा बन्द कर दिया और यह शब्द मुझको लिखा. उस समय मैं नहीं समझ सका कि दाता दयाल ने यह शब्द क्यों लिखा. अब मैं समझा हूँ कि चूंकि मैं सकाम भाव से दाता दयाल को ताज लाया था, दाता दयाल ने मुझको संकेत किया कि सकाम वासना मत रखो. निष्काम कर्म करो.

व्यावहारिक जीवन में बिना वासना कर्म नहीं कर सकते, अतः कर्म करना अनिवार्य है, किंतु अपने स्वार्थवश अशुभ कार्य मत करो. दूसरों के हित के लिये काम करो. सारी दुनिया के लिये तुम काम नहीं कर सकते परन्तु प्रकृति ने तुम्हारे साथ जिन लोगों का सम्बन्ध जोड़ा है, जैसे तुम्हारा भाई, स्त्री, पुत्र, पुत्री, कुटुम्ब और परिवार इत्यादि, उनके लिए निष्काम भाव से कर्म करो. सारी दुनिया के ठेकेदार तुम बन कर नहीं आये हो. गीता में भी श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि ऐ अर्जुन काम करो और उसका फल मेरे अर्पण कर दो.

सकाम कर्म और निष्काम कर्म दोनों ही काम है. सकाम कर्म करने वाला मनुष्य अपने काम के फल का भागी होता है. निष्काम कर्म करने वाला अपने काम के फल का भागी नहीं होता.

जीवन का मन्तव्य यह है कि अपने कर्म को नियमानुकूल बनाओ. यह समझ सत्गुरु से मिलती है. मैं ब्राहमण हूँ अगर मैं दाता दयाल का पक्ष रख कर दूसरों से द्वेष रखूँ, उनकी निन्दा करूँ तो मुझमें और सीता में क्या अन्तर है. मैं कोई ऐसी बात नहीं कहता जो मेरी आत्मा के विरुद्ध हो. संसार के लोग मुझ पर विश्वास करते हैं अगर मैं सच्ची बात न कहूँ तो विश्वासघाती हूँ. जैसे और लोग मुझ पर विश्वास करते हैं वैसे मैं भी दाता दयाल पर विश्वास करता था. उन्होंने मेरे साथ कोई विश्वासघात नहीं किया. तुम कैसे आशा कर सकते हो कि मैं कोई काम सकाम करूँगा. प्रारब्धवश विवशतः ऐसे विचार आ जाते हैं तो चूंकि मुझे इसका ज्ञान है मैं ऐसे विचारों के प्रभाव से कोई कार्य नहीं करता. उनको जहाँ का तहाँ छोड़ देता हूँ.

गुरु नाम है आदर्श का जो पूर्ण है. न मैं स्वयं गुरु हूँ, और न दाता दयाल स्वयं गुरु थे. गद्दीपतियों ने अपने मान और धामों के लिये अपने आपको गुरु बताकर जनता को अंधा बना दिया है. मैं इस वास्ते सत्संग कराता हूँ कि जनता को ज्ञान हो जाये कि वास्तविकता क्या है और गुरु कौन है.

मैं दाता दयाल की शिक्षा का प्रेमपूर्वक निष्काम भाव से प्रचार करता हूँ. जो आदमी अपने सच्चे हितैषी पर संशय करता है, वह अशुभकर्म करता है. मेरे दिल में संसार के लिए निष्काम प्रेम है. मैं सच्चे हृदय से चाहता हूँ कि जीवों का अज्ञान दूर हो. जो मनुष्य मेरी शत्रुता करेगा वह अपने ही कर्म से प्रकृति के नियम के अनुसार नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा. मैंने दाता दयाल से प्रेम किया. इसके बाद मुझे मान मिल गया, परन्तु मान मिलने से मैं कोई तर तो नहीं गया. मैंने इच्छा की थी या सकाम कर्म किया था उसका फल मुझको मिला. अब जहाँ जाता हूँ सत्यता का प्रचार करता हूँ.

ईश्वर का रूप

(सत्संग से पहले यह प्रार्थना पढ़ी गई)

नमो सत गुरुम्, सच्चिदानन्द रूपम् ।
नमो अद्भुतम्, अद्‌वितीयम् अनूपम् ।।
नही रूप कोई हैं सब रूप तेरे ।
तेरी सब ही परजा हैं और भूप तेरे ।।
धरा सन्त औतार, जग को चिताया ।।
दुखी दीन को, अंग अपने लगाया ।
दिया संग सत का, मिला सत का जीवन ।।
तेरे नाम पर, शीश तन मन है अर्पन ।।
झुके राधास्वामी चरन हंसते हंसते ।
तुझे कहते हैं सब नमस्ते नमस्ते। ।।

दाता दयाल (महर्षि शिव) पर मेरा विश्वास था. उन्होंने मुझको संतमत की शिक्षा दी परन्तु कबीर साहब व स्वामी जी महाराज की वाणी मेरी समझ में नहीं आती थी. दाता दयाल ने दया करके मुझको इसकी सत्यता का अनुभव करा दिया. मुझे अनुभव हो गया कि संत कबीर और राधास्वामी दयाल ने जो खंडन मत-मतान्तरों का जिस दृष्टि से किया है वह सत्य है.

प्रत्येक धर्म-पंथ कहता है ईश्वर ऐसा है वैसा है. उसके रूप के विषय पर बहुत से विवाद किये जाते हैं. हिन्दुओं ने कुछ माना, मुसलमानों ने कुछ माना, ईसाइयों ने कुछ माना इत्यादि. दाता दयाल (महर्षि शिव) ने जो उसका रूप वर्णन किया है उसे सुनो. उनका शब्द है-

तू जान अजान से न्यारा है तू जान नहीं अनजान नहीं
किसने तुझे जाना पहिचाना, तू ज्ञान नहीं अनुमान नहीं
इस बानी ने नहीं गम पाई, नहीं बुधि में आई चतुराई
मन अमन बना घबराया हुआ तू मान नहीं अभिमान नहीं
अनजान को क्या कोई जानेगा, और इष्ट को क्या पहचानेगा
योगी ज्ञानी थक कर बैठे, उन्हें जान नहीं पहचान नहीं
सब कहने को तो कहते हैं, कह कर संशय में रहते हैं
इन कहने सुनने वालों में, अनुमान नहीं परमान नहीं
कहां जाकर कोई तुझे पावै, कैसे तू किसी के हाथ आवै
तेरा निश्चित कोई इस जग में, ठिकान नहीं अस्थान नहीं
नहीं स्वर्ग नर्क का है वासी, नहीं दुखरासी नहीं सुखरासी
निगम अगम को मथ कर देखा, तू गान नहीं सुर तान नहीं
राधास्वामी सतगुरू आये, सुरत शब्द भेद कह कर गाये
चित हुआ समाहित तब मेरा, इस समता का उत्थान नहीं

उसको ढूंढने के लिए मैं भी निकला था. कभी राम के रूप में माना, कभी कृष्ण के रूप में माना. कभी ईश्वर कहता या कभी ब्रह्म कहता था. सारा जीवन खोज करता रहा. जब गुरु बना और लोगों ने मेरे रूप को अपने अन्तर में प्रकट करके अपनी वासनायें तथा मनोकामनायें पूरी कीं तो मेरी आँख खुल गई कि सार भेद क्या है. मैं स्वयं किसी के अन्दर नहीं जाता मगर इस बात को तमाम पंथों के आचार्यों ने गुप्त रखा. इसका फल यह हुआ कि मनुष्य जाति भिन्न-भिन्न पंथों में बँट गई. मैंने दाता दयाल के आदेशानुसार इस रहस्य को स्पष्ट वर्णन कर दिया. मेरा वचन व अनुभव सारी दुनिया के लिए है क्यों कि मेरा काम जगत कल्याण का है. दाता दयाल का शब्द है-

तेरा रूप है अद्भुत अचरज तेरी उत्तम देही
जग कल्याण जगत में आया, परम दयाल सनेही

प्रश्न – जगत का कल्याण कैसे हो सकता है?
उत्तर – सार भेद को समझ कर उस पर क्रियात्मक होने से जगत का कल्याण हो सकता है.

प्रश्न – वह भेद क्या है?
उत्तर – उस मालिक को मनुष्य ने अपने अपने विचार से विभिन्न रूपों में मान रखा है परन्तु वह ऐसा नहीं है. वह हर एक में व्यापक है. वह रूप, रंग, रेखा से न्यारा है. जितना दृश्य है वह सब उसकी लहर है. मनुष्य के अंदर में जो विचार, रंग, रूप और रेखाएँ प्रगट

होती हैं यह सब उसका अपना श्रद्धा-विश्वास है जो उसको बाहरी बातें सुन कर देखकर, पुस्तकें पढ़ कर अथवा इस ब्रह्माण्ड के रेडियेशन के कारण पैदा होती हैं.

जा की रही भावना जैसी, हरि मूरति देखी तिन तैसी.

इससे सिद्ध हुआ कि असली मालिक केवल परमतत्व है. जितने भाव-विचार, रूप व रेखा हैं वह परमतत्व से पृथक है. मनुष्य अपने अज्ञान व भ्रम के कारण भिन्न-भिन्न धर्मों, पंथों व जाति-पांति में बँट गया है. वह अपने को अज्ञान बस हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बुद्ध तथा जैन इत्यादि समझ बैठा है.

दाता दयाल ने लिखा है कि उन्होंने क्या देखा, कैसे देखा, किस आधार पर उन्होंने ऐसा लिखा है मुझको नहीं मालूम है. मैंने भक्ति की, राम-नाम की रट लगाई, मन्दिरों में गया, तीर्थों में भ्रमण किया, सुमिरन ध्यान और भजन किया मगर यह नहीं समझ सका कि वह क्या है. इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए दाता दयाल ने सन 1918 ई. में पाँच पैसे और एक नारियल मेरी गोद में रखकर मस्तक नवा कर मुझको नमस्कार किया. क्यों ऐसा किया? मुझे नहीं मालूम. इस बात को वह जानते होंगे. मैं यह समझता हूँ कि उन्होंने मुझ अज्ञानी और मूर्ख को सार भेद का ज्ञान प्राप्त कराने के लिए यह काम किया. मेरे अज्ञान व भ्रम को दूर करने के लिये उन्होंने जो खेल खेला उस पर जब मैं विचार करता हूँ तो मेरा सर उनके अहसान से झुक जाता है. उस समय मैं कुछ नहीं जानता था. केवल उस मालिक से मिलने की तीव्र इच्छा थी. उन्होंने आदेश दिया था कि बावले, तुझको काम सौंपता हूँ. इस काम को करना. जिस वस्तु की खोज में तू निकला है वह वस्तु तुझ को प्राप्त हो जायेगी. मैंने उनकी आज्ञा का पालन किया और जिस वस्तु की मुझको खोज थी वह वस्तु मुझको मिल गई. मैंने आज तक कोई ऐसा व्यक्ति नहीं देखा जिसने एक अज्ञान व मूर्ख शिष्य को ज्ञान प्रदान करने के लिये अपना सर उसके पाँव पर नवाया हो.

मैंने आत्मिक केन्द्रों की यात्रा करके अपने अंतर में उसका अनुभव किया है जिसको संत सहस्रदल कँवल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न, भँवर गुफा, सत लोक, अगम, अलख और अनाम कहते हैं. यह केन्द्र मनुष्य के जीवन के अनुभव हैं तथा शारीरिक, मानसिक और आत्मिक चेतनताएँ हैं. हिन्दू ऋषियों ने उसको भूर भुवः स्वः, महः जनः तपः सत्यम् कहा. मुसलमान सूफियों ने उसको तलब, इश्कर, मारफ़त, तौहीद, इस्तगना, फ़ना और बक़ा या नासूत, मलकूत, जवरूत, लाहूत, हूत, हूतूलहूत और वाहूत कहा. अंग्रेज फिलॉसफरों ने उसको Consciousness, Sub-consciousness, Super consciousness और Infinity कहा. सनातन मत वालों ने उसको अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष तथा आनन्दमय कोष कहा. किसी ने उसको एकत्ववाद, द्वैतवाद, त्रियवाद अनेकवाद, कहा. यह सब मनुष्य की अपनी अपनी कल्पनाएँ हैं.

जब मनुष्य सहस्रदल कँवल में सुमिरन करता है तो देह के बोध-भान समाप्त हो जाते हैं. त्रिकुटी में पहुँचने पर चित्तवृत्ति ठहर जाती है. मन में जितने बोध-भान हैं समाप्त हो जाते हैं. आगे चल कर ऐसी अवस्था आती है कि वह अनहद शब्द को सुनते-सुनते सब कुछ भूल जाता है. यही सच्चा देश है. उसको कोई क्या कुछ कहे.

संसार के जितने मत तथा पंथ है उनके अनुयाई अपने अज्ञानवश सार भेद को न समझने के कारण आपस में झगड़ा करते हैं.

स्वराज्य के प्राप्त होने पर मज़हब की ग़लत समझ के कारण मुसलमानों व हिन्दुओं के सर कटे. कलयुग में मनुष्य को सच्चा ज्ञान देने के लिये, आपस में एकता व प्रेम पैदा करने के लिये सन्त प्रगट हुये.

सत जुग, त्रेता, द्वापर बीता, काहू न जानी शब्द की रीता.
कल जुग में स्वामी दया विचारी, प्रगट करके शब्द पुकारी.

ऐ मनुष्य, तेरी ज़ात (निज स्वरूप) जैसा मैंने ऊपर लिखा है वैसी है. तू अपने मन के चक्र में आकर फँस गया है. अज्ञान तथा अविद्या ने तुझको घेर लिया है. इसको दूर करने और ज्ञान प्राप्त करने के लिये तथा ईश्वर की प्राप्ति के लिये जो मार्ग मनुष्य धारण करता है उससे उसकी इच्छा शक्ति तो अवश्य प्रबल हो जायेगी और उसकी मनोकामनाएँ पूरी होंगी परन्तु उसको सच्ची समझ व सच्चा ज्ञान इस ईश्वर पूजा से नहीं मिलेगा और न शान्ति प्राप्त होगी. इसी वजह से जब-जब सत्यता लुप्त होती है तब-तब प्रकृति मनुष्य रूप धारण करके पथ-प्रदर्शक होती है.

धर्म क्या है? धर्म जीवन व्यतीत करने का वह मार्ग है जिस पर चलने से मनुष्य का शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक जीवन शांतिपूर्वक व्यतीत हो जाये. इस समय संसार की जो परिस्थिति है उसको अनुकूल रखने के लिये मनुष्य को सच्ची समझ और सच्चे ज्ञान की आवश्यककता है. उसको प्रगट करने के लिये कबीर साहब, नानक साहब व राधास्वामी दयाल प्रगट हुए और उन्होंने अपनी शिक्षा का प्रचार किया, लेकिन उनकी शिक्षा गुप्त रह गई. परिणाम यह हुआ कि परस्पर भेदभाव हो गया और वास्तविकता की समझ नहीं रही, अलग-अलग गद्दियाँ बन गईं.

इस अज्ञान के कारण संतों की शिक्षा जो एकता तथा प्रेम की थी उसमें भेदभाव व द्वेष पैदा हो गया.

मैं वक्तगुरु हूँ. वक्त कहते हैं वर्तमान परिस्थिति को, गुरु कहते हैं समझ को. अतः वक्त गुरु वह है जिसको इसका अनुभव ज्ञान हो कि सब मनुष्य वास्तविक रूप में उस परमतत्व

अकाल पुरुष के एक ही रूप हैं. वह स्थान अवगत था, जिसका कोई रूप-रंग-रेखा नहीं है. उसमें गति होकर प्रकाश ज्योति उत्पन्न हुआ. वह प्रकाश ईश्वर है. मैं अपनी आत्मा से पूछता हूँ कि ऐ फकीर क्या तू अहंभाव में आकर अपने को ऐसा कह रहा है? मेरी आत्मा कहती है कि नहीं. ऐसी बात नहीं है. तू वास्तव में समय का गुरु है. मनुष्य को इस शिक्षा की ज़रूरत है कि वह अपने आपको समझे अतः मैं इस सारवस्तु की शिक्षा का प्रचार करता हूँ.

प्रत्येक मनुष्य इस परमतत्व या चेतन की एक बूँद या किरण है. सब मनुष्य एक समान है. मुझको अपने स्वरूप का ज्ञान हो गया है. दूसरों को अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं है. मैं अपने को अहम् ब्रह्मास्मि या मैं ईश्वर हूँ तो नहीं कहता हूँ. अपने परमपूज्य गुरु दाता दयाल की आज्ञा के अधीन मैं जनता को सच्चा मार्ग दिखाना अपना कर्तव्य समझता हूँ.

इस बात की ज़रूरत नहीं है कि इस शिक्षा का नाम राधास्वामी मत ही रखा जावे. दाता दयाल ने जिस शिक्षा का प्रचार किया है उसकी वर्णन शैली मैंने बदल दी है, क्योंकि वह कह गये हैं कि 'फकीर समय बदल जायेगा, मत व धर्म समाप्त हो जायेंगे, चोला छोड़ने के पहले शिक्षा की वर्णनशैली बदल देना.' इस शिक्षा का वक्त गुरु की हैसियत से समयानुकूल मैं प्रचार करता हूँ. इसके बाद जो वक्त गुरु होगा वह शासन में आयेगा. इस शिक्षा को छोड़ कर दूसरी कोई शिक्षा नहीं है जो जनता की हितकारी हो. मज़हबी भेदभाव को दूर करने के लिये केवल यही एक औषधि है. जब तक शासन इस शिक्षा को ग्रहण नहीं करेगा प्राणीमात्र का कल्याण नहीं होगा. भय के बिना प्रीति नहीं होती. प्रकृति अवश्य परिस्थितियों को बदल देगी.

हम लोगों में मज़हबी झगडे क्यों हैं? क्योंकि हम लोगों को सारभेद की समझ नहीं है. जिस किसी ने इस शिक्षा का प्रचार किया उसके साथ शत्रुता की गई. हम लोग उसके अधिकारी नहीं थे. अब समय बदल गया. मेरी भविष्यवाणी है कि अगर दुनिया ने मनुष्यता को अपना कर अपने को नहीं संभाला तो वह अवश्य तबाह हो जायेगी. कोई शक्ति उसको बचा नहीं सकती. मनुष्यता के प्रचार करने वाले क्रियात्मक हों, वाचकज्ञानी न हों. मुझको याद है कि महात्मा गाँधी ने 1942 ई. में मरणव्रत धारण किया था. वे अपने सत्संग में गीता, कुरान तथा बाईबल का पाठ कराते थे. इस विषय में वह वाचकज्ञानी थे, क्रियात्मक नहीं थे. दाता दयाल की शिक्षा से मुझको इस बात का ज्ञान हो गया था कि वाचक ज्ञानियों का परिणाम क्या होता है. मैंने महात्मा गाँधी को पत्र लिखा कि आप एकता के वास्ते गीता, कुरान व अंजील को अपने सत्संग में पाठ कराते है. चूँकि आप स्वयं हिन्दू विचारधारा के हैं और इन सब ग्रंथों को राजनीतिक दृष्टि से सत्संग में पाठ कराते हैं ताकि हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाई एक हो जावें. उससे आपका और जनता का भला नहीं होगा. मेरा यह विचार सत्य निकला.

जब तक संसार में इस विचार के मनुष्य नहीं होंगे जो सन्तों की शिक्षा को ग्रहण करके राम, रहीम और गॉड (God) के शब्द के जाल से निकलकर उस परमतत्व का (जो कि अनाम, अरूप, अरंग और अरेखा है) साक्षात्कार न कर लेंगे और जीवन व्यतीत करने के रहस्य को समझ कर प्रत्येक मनुष्य को अपना भाई नहीं समझेंगे तब तक संसार की भलाई नहीं हो सकती है.

जो लोग इस विचारधारा के हैं कि अगर वह राजपूत हैं और किसी दूसरे जाति वाले से राजपूत का मुकाबला हो जाय तो वह राजपूत ही को मदद देंगे या अगर वह मुसलमान हैं तो वे मुसलमान को ही मदद देंगे तो उन लोगों को सारतत्व का ज्ञान नहीं है, इस वजह से वह ऐसा पक्ष करते हैं. जब तक सन्तों की शिक्षा से इनको सार भेद का ज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता और उनकी संगत से इनकी बुद्धि, मन थिर होकर उनका चित्त ठहर नहीं जाता तब तक उनको इसकी समझ नहीं आयेगी. बीमार लोग मेरे पास आते हैं और चाहते हैं कि आराम हो जाय. मैं कहता हूँ कि भाई तुम देहधारी हो. बीमारी सबको होती है और सबको मरना है. इसलिये मुख्य वस्तु क्या है? ज्ञान, समझ चित्त ठहराव. इसके लिये सुमिरन और ध्यान है. इससे मन ठहर जायेगा. क्या हर मज़हब का मन्तव्य ईश्वर की पूजा है? नहीं, हर पंथ का असली मन्तव्य चित्त का ठहराव है. मौलाना रूम कहते हैं 'इबादत व तकलीद गुम रही अस्त' देखा-देखी की पूजा मनुष्य को गुमराह बनाती है. दाता दयाल कहते हैं :-

किसकी तलाश? उसकी जो हर वक्त रूबरू है.
यह जुस्तजू नहीं है, तौहीने जुस्तजू है.

ईश्वर हर समय तुम्हारे सामने है. उसकी क्या खोज करते हो? यह खोज नहीं है. यह खोज का अपमान करना है.

जो कुछ तुमको मिलता है उसको राम, रहीम या गॉड नहीं देता बल्कि वह तुम्हारी प्रबल इच्छा शक्ति से मिलता है. जब तुम्हारे मन में किसी वस्तु की प्रबल इच्छ होगी तो मालिक की दया की धार उमड़ कर उसको पूरा कर देगी. देह और मन को थिर करने के लिए नाम दान लिया जाता है.

तन थिर, मन थिर, वचन थिर, सुरत निरत थिर होय.
कहैं कबीर उस पलक को, कल्प न पावे सोय.

संसार में केवल मैं ही एक व्यक्ति ऐसा नहीं हूँ जिससे नाम दान लेने से तुम्हारा कल्याण हो सकता है. जिस किसी पर तुम्हारा विश्वास हो उससे नाम दान ले लो और सुमिरन ध्यान करो जिससे तुम्हारा मन शांत हो जाये. चाहे राधास्वामी कहो, चाहे राम कहो, चाहे रहीम कहो या एक-दो-तीन कहो. यह सब शब्दों के झगड़े हैं. मतलब तो चित्त की वृत्तियों के एकाग्र

करने से है. एक डाक्टर मेरे पास आया. वह नास्तिक था. उसका दिमाग सही नहीं था. साईंस के नियम पर मैंने उसको समझाया कि तुम लम्बे साँस में 1 से लेकर 100 तक गिना करो और 40 दिन बाद आकर अपनी हालत बताओ. वह 40 दिन बाद आया और कहा कि जो उपाय मैंने बताया था, उस पर क्रियात्मक होने से उसकी बीमारी जाती रही. क्या तुम बता सकते हो कि इसमें क्या रहस्य है? इसका रहस्य यह है कि ऐसा करने से उसके चित्त की वृत्तियाँ एकाग्र हो गईं. वृत्तियों के एकाग्र होने से उसमें जो कमी थी स्वयं पूरी हो गई या यह समझो कि चित्त की वृत्ति एकाग्र होने से उसको जिस वस्तु की तीव्र अभिलाषा थी वह मिल गई.

इसको दूसरे रूप में यों समझो. एक माई (जिसको मैं कन्नौज की माई कहता हूँ) ने मुझको कन्नौज बुलाया था. उसकी तीव्र इच्छा थी कि मैं कन्नौज आऊँ. इस कारण वह मेरे ध्यान में रहती थी. उसके चित्त की वृत्तियाँ एकाग्र हो गईं जिस दिन मैं वहाँ पहुँचने वाला था उसके अन्दर दृश्य प्रगट हुये कि मैं काले रंग की मोटर में चार आदमियों के साथ आ रहा हूँ. उसने सुबह ही यह बात अपने लड़कों से कह दी. दोपहर के बाद जब मैं कन्नौज पहुँचा तो लोगों ने देखा कि जिस हालत में माई ने सुबह कहा था उसी हालत में मैं वहाँ पहुँचा हूँ.

मेरे पैर में दर्द था. मेरे नौकर का पिता मेरा भगत था. उसको मेरे पैर का दर्द अन्तर में अनुभव हुआ. दूसरे दिन वह अपने गाँव से मेरे यहाँ आया. मैंने पूछा क्यों आये. उसने कहा मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि आपके पैर में दर्द है इसको देखने के लिये आया हूँ और वह बात ठीक निकली है. यह सुन कर मैं चकित हो गया.

एक बार दाता दयाल को चोट आई थी. दयाल की माई (गोरखपुर वाली) को इसका ज्ञान हो गया. वह घर से धाम में आई और उनकी सेवा करनी लगी.

इससे सिद्ध हुआ कि जो व्यक्ति जिस मनुष्य वस्तु तथा विषय से प्रेम रखता है उसके बारे में उसको ज्ञान हो जाता है. चूंकि दाता दयाल के प्रति मुझे विश्वास था कि वे परमतत्व के अवतार हैं अतः उनके द्वारा मुझे परमतत्व का ज्ञान प्राप्त हो गया. इस आधार पर मैं कहता हूँ कि ऐ मनुष्य तू अपने आपको पहचान. तू अपने को हिन्दू , मुसलमान, सिक्ख व ईसाई मत समझ. तू मनुष्य है और मनुष्य बन कर जीवन व्यतीत कर.

मानव बन कर ना मुआ, मुआ तो डांगर ढोर.
एको जीव ठौर ना लगा, लगा तो हाथी घोड़.

दाता दयाल ने सत्यता तथा अद्वैतवाद की शिक्षा दी. दूसरे व्यक्ति कहने को तो वास्तविकता की शिक्षा देते हैं मगर जब अपनी सत्यता की शिक्षा को पृथक करके उसका प्रचार करने के लिये दूसरे आचार्यों से ईर्ष्या करते हैं तो सत्यता के प्रचारक कैसे हुये. इन लोगों ने तो बजाय

एकता प्रेम और शांति के प्रचार के, भिन्नता, ईर्ष्या, द्वेष का प्रचार करके मनुष्य को एक दूसरे से पृथक कर दिया. ऐसे लोग सन्त नहीं है. सन्त तो वह है जो जनता को वास्तविक ज्ञान, एकता और प्रेम की शिक्षा देते हैं. यह शिक्षा प्रवृत्ति मार्ग वालों के लिये है. निवृत्ति मार्ग की शिक्षा तो नाम की प्राप्ति को है.

नाम रहे चौथे पद मांही, यह ढूँढे त्रिलोकी माहीं.
नाम की प्राप्ति शरीर, मन और आत्मा से परे की अवस्था है.

शब्द

(1) कुछ नहीं दुर्गम सुगम, सब कुछ जो गुरु के दास हो.
दास वह सच्चा है जिसमें, भक्ति हो विश्वास हो.
मैं हूँ तुझमें तू हैं मुझमें, मेरा तेरा है भरम.
छोड़ मैं तू का भरम निज रूप की जो आश हो.
मुझको सुमिरो मुझको ध्याओ, हो भजन मेरा सदा.
ध्यानो सुमिरन और भजन की, रीति सांसों सांस हो.
हूँगा प्रगट जब बुलाओगे, कभी तुम चाह से.
मेरे रहने की जगह, भूमि नहीं आकाश हो.
राधास्वामी ने दया की, भेद अन्तर का दिया.
देख लोगे मुझको सब, नित शब्द का अभ्यास हो.

(2) गुरू और नाम भक्ति
गुरू तारेंगे हम जानी,
तू सुरत काहे बौरानी.
दृढ़ पकड़ो शब्द निशानी,
तेरी काल करे नहीं हानी.
तू हो जा शब्द दिवानी,
मत सुनो और की बानी.
सब छोड़ो भर्म कहानी,
गुरू का मत लो पहचानी.
चढ़ बैठो अगम ठिकानी,
राधास्वामी कहत बखानी.

मैं अपने को वक्त का सत्गुरु कहता हूँ. मैंने अपने जीवन में कई गलतियाँ खाई हैं मगर इस बात में कोई ग़लती नहीं करता हूँ कि मैं अपने को सत्गुरू वक्त कहता हूँ, क्योंकि मैंने न तो

अपने निजी मान, बड़ाई तथा धन के लिये हेराफेरी की और न व्यवहार और परमार्थ में हेराफेरी की.

जिस समय मैं दाता दयाल के चरणों में उपस्थित हुआ, मैं अपने को हिन्दू समझता था. वेद और शास्त्र अनुयायी था और ईश्वर को मानता था. हिन्दू धर्म के अनुसार मैंने दाता दयाल को मालिकेकुल सर्वाधार का अवतार माना और उन पर पूर्ण विश्वास किया. उन्होंने मेरा ध्यान भक्ति योग और ज्ञान की तरफ से हटा कर गुरु की ओर आकर्षित किया उनका शब्द है.

शब्द

मन तू सोच समझ पग धार.
बिन समझे कोई पार न पावे, भटके बारम्बार.
संशय दुविधा और चतुराई, यह अज्ञान बिकार.
कोई नर पशु, कोई त्रिया पशु, गुरू पशु कोई गंवार.
वेद पशु है सब संसारा, समझ विवेक विचार.
माया पशु माया का बन्धुवा, मुक्ति पशु स्वीकार.
भक्ति पशु बंधन नहीं काटे, बूड़ा काली धार.
ज्ञान पशु की क्या करूँ निन्दा, वह ग्रन्थरन के लार.
जड़ चेतन की गाँठ न खोले, उरझ उरझ रहा हार.
योग पशु बंधे योग की रसरी, बैठे आसन मार.
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, सेवक हुआ भव पार.

उपरोक्त शब्द दाता दयाल ने मेरे नाम उस समय लिखा था जब मैं बग़दाद में नौकरी करता था. क्यों लिखा? क्योंकि मैं उस परम पुनीत विभूति को सर्वाधार का अवतार मानता था और ऐसा विश्वास करके उनसे प्रेम करता था और दाता ही को सब कुछ समझ बैठा था. मुझे वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त कराने के लिये उन्होंने मेरे नाम शब्द लिखा मगर गुरु भक्ति का रहस्य मेरी समझ में नहीं आया और वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, तन की तपन नहीं बुझी और खोज की समाप्ति नहीं हुई.

जब तक किसी मनुष्य को पूर्णता प्राप्त नहीं होती निजस्व रूप का साक्षात्कार नहीं होता, सुरत को चैन नहीं मिलता. किसी न किसी प्रकार की अशान्ति रहती है. किसी वस्तु के प्राप्ति की लगन बनी रहती है. प्रश्न उठा करते हैं, जिसका मन्तव्य यह है कि अन्तर में कोई न कोई कुरेद बाकी है. यही हाल मेरा भी था मगर आचार्य पदवी पर आने पर मेरे वह सब प्रश्न समाप्त हो गये. ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि मैंने गुरु की सेवा की. गुरु सेवा क्या है? वह यह है कि गुरु जो आज्ञा देता है उसका पालन करो. वह तुम्हारे मन की गढ़त को तुमसे

अधिक जानता है. वह जानता है कि तुमको सार वस्तु का ज्ञान कैसे प्राप्त होगा. मेरे बाहर और अन्तर का द्वैतवाद समाप्त नहीं होता था. बाहर में तो उनके देह के पीछे लगा रहता था और अन्तर में उनके रूप को प्रगट करके उसके पीछे दौड़ता रहता था. अन्तर में सुमिरन ध्यार करता था और शब्द को सुनता था. इस प्रकार मेरी खोज समाप्त नहीं होती थी. यह कुरेद उन्होंने समाप्त कर दी. उन्होंने मेरी यह कुरेद कैसे समाप्त कराई? पहली बात यह है कि मैंने उनकी आज्ञा का पालन किया. दूसरी बात यह है कि मैं स्वार्थी नहीं था. कोई कार्य अपनी मान-प्रतिष्ठा तथा निजी स्वार्थ के लिए नहीं करता था. इसी कारण वह कुरेद समाप्त हो गई.

मैं सत्गुरु हूँ. सत कहते हैं 'है-पने' को. हैपना कैसे प्रगट होता है? मुझको इस बात का ज्ञान है कि 'हैपना' कैसे प्रगट होता है, इसका खेल कैसे होता है. चूंकि मुझे इस बात का ज्ञान हो गया है कि सत कैसे प्रगट होता है, कैसे प्रकाश में आता है और कैसे अपना खेल खेलता है, मैं सत का ज्ञान रखता हूँ अतः मैं सत्गुरु हूँ. सन्त उस व्यक्ति को कहते हैं जो कि सत में रहता है. चूंकि मुझे सत का ज्ञान है, मैं सत में रहता हूँ मैं सत्गुरू और सन्त सत्गुरू हूँ.

सिष साखा बहुते किये, सतगुरु किया न मीत.
चाले थे सत लोक को, अन्तहिं अटका चीत.

सन् 1964 ई. में 13 अप्रैल को मानवता मंदिर के उद्घाटन के अवसर पर मैंने हजूर सन्त कृपाल सिंह और भाई नन्दू सिंह तथा अन्य महात्माओं से एकान्त में प्रश्न किया कि भाई मैं तो किसी व्यक्ति के अन्तर जाकर उसमें प्रगट होकर उसकी मदद नहीं करता. क्या आप लोग ऐसा करते हैं? तो सब महात्माओं ने यही उत्तर दिया कि हम लोग भी ऐसा नहीं करते. भाई नन्दू सिंह जी ने यह भी कहा कि दाता दयाल ने भी यही कहा था कि वह किसी के अंतर प्रगट होकर उसकी सहायता नहीं करते. इन लोगों से मैंने पूछा कि अगर कोई आचार्य इस रहस्य को गुप्त रख कर अपनी मान प्रतिष्ठा करवाने और अपने को पुजवाने के लिए ऐसी बात कहता है तो क्या वह पाप का भागी नहीं होगा? सब महात्माओं ने कहा अवश्य होगा.

बाबा हरचरन सिंह के सत्संग में लाखों आदमी आते हैं. उनके तीन शिष्य मरे. मरते समय उन्होंने कहा कि उनके अन्तर मेरा व बाबा हरचरन सिंह जी का रूप प्रगट हुआ और उन लोगों ने राधास्वामी कहकर प्राण त्याग दिया. उन लोगों में से एक व्यक्ति के लड़के ने मुझसे कहा कि जब वह अपने पिता के शव के पास बैठा हुआ था तो उसको नींद आ गई. नींद में उसने एक महान प्रकाश देखा जिसमें आगे-आगे मैं और पीछे-पीछे बाबा हरचरन सिंह थे और उसका पिता हम लोगों के साथ था. धर्मराज से कहा कि भाग जाओ यह मेरा हंस है. बाबा हरचरन सिंह से इसके बाद जब भेंट हुई तो यह बात मैंने उनसे कही और पूछा कि

भाई मैं तो नहीं गया था क्या आप गये थे. उन्होंने उत्तर दिया कि मैं भी नहीं गया था. मैंने उनसे कहा कि आपके साथ एक लाख व्यक्ति सत्संगी हैं अपनी अज्ञानता के कारण आपकी जान खाते हैं. आपका मोटर पर चढ़ना कठिन हो जाता है. उनको वास्तविक बात बता जाइये.

संसार में जो मत प्रचलित है उनके अनुयायी अपने-अपने विश्वास के अनुसार अज्ञानवश उनके मन में जैसी-जैसी कल्पनाएँ उत्पन्न होती हैं उनको सत्य मान कर उसके अनुसार कार्य करते हैं. इस अज्ञान को दूर करने के लिये मैं शरीर धारण करके प्रगट हुआ हूँ ताकि मनुष्य जो अपने मन की वासनाओं में फँस कर भटक रहा है और अपने निज घर से दूर होकर आवागमन के चक्र में पड़ा हुआ है उसको चिता कर उसका निज स्वरूप जो आदि अनादि, जुगादि अनाम तथा परमतत्व है, उसको लखा दूँ.

अगर स्वामी जी महाराज को अपनी पूजा करवाने और अपने पंथ के चलाने की अभिलाषा होती है तो वह अपनी बानी में यह कभी नहीं लिखते कि 'वक्त, गुरु बिन काज न सरई.' जब-जब कोई संत सत्गुरु प्रगट हो तो प्रत्येक पंथ के अनुयाई को उसकी शिक्षा को ग्रहण करना चाहिये ताकि उसकी सुरत मन के चक्र से निकल अपने निज रूप का ज्ञान प्राप्त करले. गुरु नाम है ज्ञान का, सत्गुरु नाम है सच्चे ज्ञान का. संत सत्गुरु उसको कहते हैं जो देह मन, शब्द और प्रकाश स्वरूप आत्मा के परे होकर इन पर विजय पा लेता है. उसको शारीरिक, मानसिक और आत्मिक जीवन के बोध-भान की चेतन्यताओं का ज्ञान होता है. उसकी सुरत अपने आप में रहती है. वह अपने आप में जा सकता है. केवल ऐसा ही व्यक्ति किसी को उसके, घरेलू, सामाजिक, राजनीतिक और आत्मिक कार्यों में वास्तविक पथप्रदर्शक हो सकता है. ऐसे व्यक्ति के आदेशानुसार क्रियात्मक होने से मनुष्य का कार्य सिद्ध हो जाता है. गुरु का सम्मान करना, उसकी सेवा करना और उससे प्रेम करना आत्मिक अवस्था का एक अध्याय है. दाता दयाल ने दयाल की माई को निम्नांकित शब्द लिखा था जिस पर माई ने विचार नहीं किया.

शब्द

प्रगट भइले राधास्वामी, ध्यान गर्भ फूटल हो.
ललना दरस परस सतकार, जगत जस लूटल हो.
चहुँ दिसि मंगल राग, नाद ध्वनि गाजल हो.
ललना त्रिकुटी महल अपार, अनाहद वाजल हो.
सुरत सखी रही झूम, मगन मन नाचल हो.
ललना पी पी अमृत रस सार, निरत रही मातल हो.
पंडित वेद उचारि के, चउक पुराइल हो.
ललना वन्दनबार सजाय, दुवार बँधायल हो.

छवि पर बलि बलि जाय, उमंग बढ़ावल हो.
ललना भाग्यवती बनि जाचक, भक्तिवर मांगल हो.

इस शब्द से विदित है कि जिसको तुम गुरु मानते हो वह तुम्हारे ही ध्यान से तो प्रगट हुआ है. तुम जिसको पूजते हो वह तुम्हारा ही तो आत्मा है. इसके सिवा और कोई वस्तु नहीं है.

दाता दयाल ने संसार के कल्याण के लिये मुझको फकीर बनाया और आदेश दिया कि जगत कल्याण का कार्य तुमको सौंपता हूँ. फकीर भजनावली में इस पर शब्द लिखा है. मेरे सच्चाई को प्रगट करने से वह गुरु जो अपने को पुजवाते हैं, धन व मान प्राप्त करते हैं, उनके इस कार्य में बाधा पड़ती है. मेरी शत्रुता की गई और मुझे जान से मार डालने का प्रयत्न किया गया. मैंने इसकी परवाह नहीं की. मैं अभय पुरूष हूँ. माँग और पूर्ति के नियमानुसार जब कभी संसार में आपत्ति आती है तब वह सर्वाधार मनुष्य का रूप धारण करके उसको दूर करके समता स्थापित करता है. परम शांति तथा निर्वाण का अधिकारी वह व्यक्ति है जो अपनी सुरत को देह, मन और आत्मा के बोध-भान से परे रखता है और इनमें फँसता नहीं है. इस अवस्था का नाम चौथा पद है. प्राचीन समय में विशेष व्यक्ति को जो इसका अधिकारी समझा जाता था, यह रहस्य बताया जाता था. यह रहस्य सीना-ब-सीना चला आया. कबीर साहब जैसे सत्पुरुष ने भी अपने गुरुमुख शिष्य धर्मदास को यह भेद बता कर आदेश दिया कि-

धर्मदास तोहि लाख दुहाई.
सार भेद बाहर नहिं जाई.
राधास्वामी दयाल ने अपनी वाणी में कहा है-
सन्त बिना कोई भेद न जाने,
पर वह तोहि कहें अलग में.

मैं इस संसार में परम दयाल बन कर प्रगट हुआ हूँ. ऐसा कहने से कोई मुझको अहंकारी न समझे. मैं किसी को बुलाने नहीं जाता हूँ कि कोई मेरी बात सुने. मैं इस हालत में दोषी होता जब मैं किसी से कुछ आशा रखता. इसकी पुष्टि में दाता दयाल ने जो शब्द मुझको लिखा है सुनाता हूँ. वह यह है-

शब्द

दूजी कथा सुनाऊँ फकीरा, कान इधर ला भाई.
मैं फकीर का प्रेमी सेवक, त्याग हृदय दुचिताई.
साधू कोई नौका चढ़ बैठा, संग में नर बहुतेरा.

दुष्ट अभागी देख के साधू, उपजा क्रोध घनेरा.
हँसी उड़ाया धूम मचाया, मारा सिर पर लाठी.
फूटा सिर साधू का भाई, साजा साज कुठाठी.
हुई आकाश बानी तब ऐसी, साध है मुझको प्यारा.
मैं साधू का सहज सनेही, छन पल का रखवारा.
उलटूँ नाव डुबाऊँ सबको, यह अनर्थ नहिं भावै.
क्यों कोई अपराधी बनकर, मेरा साध सतावै.
बानी सुनकर साध दुखी भया, बोला चतुर सुजाना.
तू दयाल है मेरा साई, अगम अनाम अमाना.
जीव निबल अज्ञानी मूरख, माया फन्द फँसाने.
यह नहिं समझे सारतत्व को, भूल भरम भरमाने.
दया दृष्टि कर इन्हें चिता दे, भाव जला दे इनका.
मेरे जैसा इन्हें बना दे, दया का देकर किनका.
साध संग का फल नहिं हानी, लाभ साध संग स्वामी.
मेट भरम अज्ञान जीव का, चरन सरोज नमामी.
फिर आकाश बानी भई दूजी एवमस्तु सुन प्यारे.
ले तेरे छिन मात्र की संगति, यह जावें भव पारे.
दुष्ट हृदय पछतावा आया, साधु चरन लग रोया.
साध ने अपने अंग लगाया, पल में दुरमति खोया.
सुन फकीर हो जा फकीर अब, रूप संभार ले अपना.
जग के प्रानी तेरे रूप है, मेट दे इनका तपना.
तेरा रूप है अद्भुत अचरज, तेरी उत्तम देही.
जग कल्यान जगत में आया, परम दयाल सनेही.

मेरा ध्येय केवल दाता दयाल की शिक्षा का प्रचार करना है जो कि यह हैः-

आप आप को आप पहचानो.
कहा और का नेक न मानो.

अपने आप को पहिचाने के लिये किसी पूर्ण पुरुष की संगत और उसके वचन को समझने की ज़रूरत है. लोग गुरु-गुरु कहते हुये मर जाते हैं मगर गुरु को नहीं समझते. सब मालिक की खोज में मंदिर, मस्जिद, तीर्थों में दौड़ते फिरते हैं और व्रत धारण करते हैं. वह इन सब में नहीं मिलता. वह कहाँ है इसके लिये दाता दयाल का शब्द हैः-

शब्द

घट में दर्शन पाओगे, संदेह कुछ इसमें नहीं.
मैं तो घट में हूँ तुम्हारे, ढूँढ लो मुझको वहीं.
शब्द सुनते हो मेरा, अन्तर में चित को साध कर.
सुरत मेरा रूप है, इसको समझ लेना यहीं.
सूक्ष्म हूँ स्थूल हूँ, कारण हूँ कारण से परे.
देख दृष्टि को जमाकर, अपने अन्तर में कहीं.
चाह जब दर्शन की होगी, देख लोगे आप तुम.
जागते में सोते में, संध्या में मैं हूँ सब कहीं.
राधास्वामी धाम में, सेवक हूँ राधास्वामी का.
मेल मेला राम में, इसकी परख आई नहीं.

इससे सिद्ध हुआ कि मालिक जिसको मनुष्य ढूँढता फिरता है वह मनुष्य का निज स्वरूप है. राधास्वामी मत वालों को भी इसका अनुभव नहीं है. कबीर साहब कहते हैं -

'शब्द गुरू को कीजिये, बहुते गुरू लबार.
अपने अपने स्वाद को, ठौर ठौर बटमार.'

दाता दयाल का दर्जा पिता का था. उनका चोला दया का था. वह सत्संगियों की ग़लती को उनसे कहते नहीं थे और इस अवसर की प्रतीक्षा में रहते थे कि कोई ऐसा समय आये जब कि उनको उनकी ग़लती संकेत द्वारा समझा दूँ. मेरा दर्जा तुम लोगों के लिये भाई का है. भाई की ग़लती को भाई प्रगट कर देता है.

गुरू ने चोला बदला, शिष्य न माने सीख.

इस ख्याल से कि मरते समय तुम्हारे गुरु महाराज आकर तुमको स्वर्ग में ले जायेंगे, तुम लोग अपने गुरु की सेवा करते हो और रुपया पैसा देते हो. यह सब मायाजाल है. गुरु लोग अपना मान कराने और गद्दी कायम रखने के लिये ऐसा करते हैं. मौज ने मुझको संसार में प्रगट किया है कि वास्तविकता समझा जाऊँ. दूसरे गुरुओं को उनके चेले प्रकाशमान करते हैं और मैं स्वयं प्रकाशमान करता हूँ.

जिस स्थान से मैं बातें कर रहा हूँ उस स्थान की बात समझने के लिये वही व्यक्ति चाहिये जो उस स्थान के समीप स्थान का वासी हो. प्रत्येक व्यक्ति जो हमारे स्थान के समीप का वासी नहीं है हमारी बात को नहीं समझ सकता है अतः पहले पूरे गुरु का सत्संग करो. पूरे गुरु के सत्संग में उसके नेत्र द्वारा दृष्टि की धार और मुख द्वारा वचन को धार प्रचलित

होती है. वह धार क्या वस्तु है? उस धार से वह वस्तु प्रचलित होती जो पूर्ण पुरुष अपनी इच्छा तथा वासना द्वारा तुमको देना चाहता है. ऐसे महात्माओं के हृदय से वही वस्तु उनके वचन द्वारा तथा दृष्टि द्वारा निकलती है, जो उनके अन्तर है. एक सिद्ध अभ्यासी की अगर यह इच्छा है कि उसका धाम आबाद हो जाय या कुछ रुपया प्राप्त हो जाय तो जब वह किसी से बात करेगा या सत्संग करायेगा तो उसका भाव दूसरों को प्रभावित करके उसके धाम को आबाद करेगा और रुपया दिलायेगा. मैं धाम बनवाने तथा धन प्राप्त करने के लिये नहीं आया हूँ. मैं तुम लोगों को निज घर तथा गुरु के देश ले जाने आया हूँ. दाता दयाल ने सन् 1921 में निम्नलिखित शब्द मुझको लिखा. उस समय मुझे यह ज्ञात नहीं था कि मैं संसार में किसलिये आया हूँ. जिस कार्य के लिये प्रकृति ने मुझे पैदा किया उसका संस्कार दाता दयाल ने मुझे नीचे लिखे शब्द द्वारा प्रदान किया.

शब्द

तीजी कथा सुनाऊँ तुझको, सुन सुन कर चित लाना
कथा नहीं यह और की प्यारे, तेरी कथा सुनाना
हरगोविन्द को कैद में डाला, जहांगीर ने भाई
ला ग्वालियर किले में फाँसा हुआ निपट दुखदाई
मिया मीर ने उसे चिताया, छोड़ फकीर को छिन में
नहिं तो उलटे राज यह तेरा, एक रात एक दिन में
जहांगीर ने हुक्म सुनाया, हरगोविन्द को लाओ
यह बोले, मैं कैद न छोडूँ, कितना करो उपाओ
मैं फकीर हूँ देह बन्ध में, जीवन के हित आया
सात हजार छोड़ दे कैदी, उमगी मन में दाया
बादशाह ने सबको छोड़ा, तब यह बाहर आये
आप छुटे औरन को छुड़ाया, दया का साज सजाये
यह इतिहासिक कथा पुरानी, चरित पुनीत सुहावन
मन रंजन मन चेत बढ़ावन, मन भावन मन पावन
देह के बन्ध फकीर जो आवे, बन्ध निरबन्ध सोई
बन्ध कर बंधुवे जीव छुडावे, समझे यह गति कोई
तू तो आया नर देही में, घर फकीर का भेषा
दुखी जीव को अंग लगाकर, ले जा गुरु के देशा
तीन पाप से जीव दुखी हैं, निबल अबल अज्ञानी
तेरा काम दया का भाई, नाम दान दे दानी

नाम फकीर धराया तूने, काम फकीर का कर ले
गुरु की दया साथ ले अपने, भक्ति की झोली भरले
तू इराक़ से अबकी आया, सतसंगत के कारन
ले परसाद यह सतसंगत का, हो जा भव निधि तारन
राधास्वामी दया के सागर, होंगे तेरे सहाई
फुकुर में उतरे साँच फकीरा, सबकी करे भलाई

मैंने अपने को वक्तगुरु कह कर शब्दों में बाँध कर अपने को सम्बोधित किया है, ताकि तुम लोगों को वास्तविकता की शिक्षा प्रदान करूँ वरना अगर समझ सकते हो तो समझ जाओ कि न मैं गुरु हूँ, न चेला हूँ, न स्वामी हूँ, न सेवक हूँ, न खालिक हूँ और न मखलूख हूँ किन्तु एक मात्र परमतत्व हूँ. कब? जब कि मैं शरीर, मन और आत्मा से परे होता हूँ. प्रत्येक व्यक्ति वही है परन्तु उसको ज्ञान नहीं है. दाता दयाल ने दया करके मुझको मेरे रूप का ज्ञान प्रदान कर दिया. उस रूप का पता बताने के लिये मैंने अपने को शब्दों के कल्पित बाँध में बाँध कर अपने को वक्तगुरु कह कर सम्बोधित किया है. अपने लक्ष्य के समझाने के लिए मुझे शब्द नहीं प्राप्त होते. सच पूछते हो तो हमारा लक्ष्य शब्दों के बंधन से परे है. अपनी ओर दूसरों को आकर्षित करने के लिए वक्तगुरु का शब्द अपने लिये प्रयोग किया है.

बंध कर बंधुये जीव छुड़ावै, यह गति जानै कोई

सत्संग करने की विधि यह है कि सत्संग में तुम्हारी सुरत का मुंह खुला रहे. किसकी तरफ? मेरे स्वरूप व वाणी की तरफ. जिस समय मैं वचन कहता हूँ तुमको चाहिए कि सुरत से मेरे वचन को ग्रहण करते जाओ और उस समय तक मेरी ओर देखते रहो, जब तक प्रवचन समाप्त न हो. तुम्हारे मन में हमारे प्रवचन से जो बुद्धि की प्रसन्नता प्राप्त होती है उस समय उस प्रसन्नता में लीन मत हो जाओ वरना बाहर से हमारी धार जो तुम सुरत द्वारा ग्रहण कर रहे हो उसको ग्रहण न कर सकोगे या हमारी धार से तुमको द्वेष हो जायेगा और द्वेष के कारण भी तुम हमारी धार ग्रहण न कर सकोगे. ऐसा भी न करो कि तुम्हारा मन प्रश्नोत्तर उठाने लगे. ऐसा करने से भी तुम हमारी बात को ग्रहण न कर सकोगे यानी जिस वस्तु के देने की इच्छा से मैं तुमको वचन कह रहा हूँ उस वस्तु को तुम मुझसे ग्रहण न कर सकोगे और हमारे सत्संग से यथोचित लाभ प्राप्त न होगा. प्रवचन समाप्त हो जाने के बाद हमारे वचनों को गुनो. इसको जुगाली करना कहते हैं. एक निर्बन्ध पुरुष की संगति करने से तुम्हारी वही दशा होगी जो एक अबोध बच्चे की होती है. वह लोटता है, खेलता है, प्रसन्न होता है और हँसता है मगर कुछ बोलता नहीं है.

ऐ दाता दयाल मैं आपका कृतज्ञ हूँ. आप परमतत्व के अवतार थे और सत्यवादी पुरुष थे. मैंने आपको उस मालिक का रूप माना. मेरी सुरत रूपी गाय इस संसार रूपी कीचड़ में फँसी हुई थी और काल रूपी शिकारी उसको बध कर रहा था. आपने निज दया से मेरी सुरत रूपी गाय को दलदल से निकाल कर काल के बध करने से बचा लिया. मेरी हाँ में अपनी हाँ मिलाते हुए मुझको मुक्त कर गये. मेरी भी हार्दिक अभिलाषा है कि जिस तरह आपने मुझे निर्बन्ध कर दिया उसी तरह मैं भी दूसरे लोगों को निर्बन्ध कर दूँ. तुम लोग मेरी बात समझने की कोशिश करो और समझ कर मुक्त हो जाओ. गुरु के देश चले जाओ. जिसको निज घर कहते हैं. वह देश कौनसा है? वह देश अपने आप में ठहर जाना है और मन तथा सुरत का किसी के आश्रित न होना है. मैं अत्यन्त मूर्ख था मगर दाता दयाल की आज्ञा पालन करने से तर गया. तरना क्या है? भव से निकलना. भव क्या है? तुम्हारे मन में तरह-तरह के संकल्प विकल्प का उठते रहना. मेरा पंथ, मेरा परिवार तथा मेरी सम्पत्ति यही भव है. और कोई भव नहीं है.

शब्द वन्दना

चरन शरन की वन्दना नित, कोई और न काम ।
गुरु बसो चित आय मेरे, बख्श दो निज नाम ।
तेरी शरणागत हुआ फिर, किसकी राखूँ आस ।
आस तो तेरी दया की, जग से रहूँ उदास ।
रूप ध्याऊँ नाम गाऊँ, शब्द राता मन ।
आठों याम तेरा ही सुमिरन, भाग मेरा धन ।
शीश पर निज कर कमल धर, लिया चरन लगाय ।
पतित पापी तर गया गुरु, शरन तेरी आय ।
मुक्ति की नहिं चाह मन में, भक्ति प्यारी लाग ।
राधास्वामी की दया से, भाग पूरन जाग ।

लूट

जगत में कैसी लूट पड़ी । टेक ।
माता कहे पूत है मेरा, भाई भाई बनावे ।
घर की तिरिया तन से लपटी, पति कह रार मचावे ।
बहिन बीर कह हँस मुसकावे, मुस के धन ले जावे ।
पुत्र बहू कहे ससुर सयाना, झूठे भाव दिखावे । लूट ।

राजा कहे मेरी है परजा, करे कमाई उद्यम ।
मक्खन काढ़ मुझे दे उत्तम, पिये छाछ नित मध्यम । लूट।
पंडित दान दक्षिणा माँगे, साधू भिक्षाधारी ।
तीरत मठ मूरति और मंदिर, लूटें लूट की बारी । लूट ।
मरते समय आग यह बोली, इसे जला खा जाऊँ ।
मिट्टी कहे गाड़ दे मुझमें, अपना अंश बनाऊँ । लूट ।
हवा सुखावे पानी घुलावे, सिमटावे आकाशा ।
चकित हुआ यह देख के लीला, लूट का अजब तमाशा ।
मैं हूँ कौन कौन है मेरा, इसकी समझ न पाई ।
देख लूट का जग विस्तारा, लूट हुई दुखदाई । लूट ।
कभी कभी भूल भरम में फँसकर, आप लुटूं लुटवाऊँ ।
लूट लूट के लुट गया सारा, लूट का मरम न पाऊँ । लूट ।
राधास्वामी की संगति पाई, समझ लूट की आई ।
व्याकुल चित चरनों में आया, ली सतगुरु शरनाई । लूट ।

मैं बच्चा था, प्रौढ़ हुआ, समझ-बूझ की शक्ति आई. माता-पिता अपनी इच्छा अनुसार कार्य में लगाना चाहते थे. मेरी लूट शुरू हो गई. मैं सोचता हूँ यह संसार क्या है? प्रत्येक दृष्टिकोण से लूट का स्थान है. लुटना या लुटवाना क्या है? दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करना लूटना है और स्वयं किसी ओर आकर्षित होना अपने को लुटवाना है. दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करने या स्वयं आकर्षित होने में कौन सी वस्तु तुम लूटते या लुटवाते हो? सुरत. स्वयं लुटने या लुटवाने दोनों में सुख व दुख है. बच्चों की तरफ हमारी मुरत स्वयं आकर्षित होती है. गुरु लोग हमारी सुरत को आकर्षित करते हैं. मैं इस लुटने से दुखी हुआ. इससे बचने के लिये दाता दयाल की शरण में आया. उन्होंने नाम दान दिया और शब्दयोग सिखाया. वह शब्दयोग निम्नांकित है-

शब्द

सुन फकीर तोहि भेद सुनाऊँ । शब्द योग खुल कर जतलाऊँ ।।
सहस कमल दल रहे अनेक । इस पद में नहिं सूझे एक ।।
यह विराट का रूप कहावे । दो प्रकार के शब्द सुनावे ।।
जोत निरंजन माया ईश्वर । प्रगटे महा स्थूल रूप धर ।।
सहस आँख और सहस कान हैं । सहस कला के यह स्थान हैं।।
देख विराट की अगम छवि, चित्त में हो परसन्न ।
तब त्रिकुटी की ओर चल, धर गुरु मूरत मन ।।
त्रिकुटी पद में है ओंकारा । त्रिलोकी का सार पसारा ।।

अ-उ-म् का शब्द रसाल । धुन प्रगटे सुन चित्त संभाल ।।
लाली उषा दृष्टि में आई । सूरत देख देख हरषाई ।।
गुरु ने धारा लाल सरूप । श्रुति संयुक्त त्रिलोकी भूप ।।
सत रज तम की धारा तीन । प्रगटी यहाँ से सुन सुन चीन्ह ।।
वेद धाम प्रनव दशा, सहज उदगीत का साज ।
राग सुनावे अद्भुती, तीन त्रिपुटि दल साज ।।
गुरू से भेद पाय चल आगे । सुरत प्रेम के रस में पागे ।।
सुन्न शिखर चढ़ ध्यान लगावे । यहाँ द्वैत पद रूप दिखावे ।
ध्येय ध्याता और ज्ञानी ज्ञाता । सुन्न में द्वैत भाव रहे माता ।
किंगरी सारंगी की धुन । दोय धार हुई मुझसे सुन ।।
पुरुष प्रकृति का अस्थान । लीला रची विचार महान ।।
यह सविकल्प समाधि का, धाम है मेरे फकीर ।
जोगी जोग के सिद्धि से, देह की भूले पीर ।।
महा सुन्न तिस परे रहाई । ब्रह्मरेन्द्र की चौकी भाई ।।
घोर अंधेरा छाया जहां । गुरू बल ले सुरत चली वहां ।।
प्राण सूर विचित्र अपारा । उज्जवल विमल अमल अति प्यारा ।।
मान सरोवर कर अस्नान । जाय लागाया गुरू का ध्यान ।।
लगी समाधि अखंड अनूप । नहिं वहां परजा नहीं वहां भूप ।।
निर्विकल्प पद तेहि निरख, यह अद्वैत का धाम ।
साध ताहि तू सुरत से, ले ले गुरू का नाम ।।
कसरत असनीस और वहदत । तीनों का अति भेद है अद्भुत ।।
जोगी ज्ञानी ऋषि मुनि भाई । इन तीनों में रहे लुभाई ।।
सत चित आनन्द में ठहराई । देह बुद्धि सुरत में भरमाई ।।
सत है देह योगी का योग । चित्त है मन ज्ञानी का सोग ।।
आनन्द ब्रह्म सुरत की लीला । माया काल ने इनको कीला ।।
तीनों तीनों में फंसे, सत गुरू मिला न कोय ।
यह सब भूले आप में, गये भरम में खोय ।
जागृत स्वप्न सुषुप्ति तीन । सृष्टी स्थिति परलय चीन्ह ।
कारन सूक्ष्म स्थूक को जान । जीव ईश और ब्रह्म पिछान ।।
स्थूल सूक्ष्म में रहे भुलाने । नहिं कोई पहुंचा ठौर ठिकाने ।।
तुरियातीत का भेद न जाना । तुरिया तीत का मिला न ज्ञाना ।।
कैसे खोल-खोल समझाउं । मिथ्यावाद को केहि विधि गाउं ।।
देह सत्त और कर्म है, मन चित ही है ज्ञान ।
सुरत आनन्द का रूप है, यह विचार ले मान ।।

यहां तक सबको गम है भाई । आगे की कोई खबर न पाई ।।
सुन सतगुरू का तू उपदेश । आगे धाम में कर परवेश ।।
भवर गुफा की खिड़की खोल । सुन सोहंग की बन्सी बोल ।।
माया काल का भेद पिछान । तब सतगुरू का पावे ज्ञान ।।
मन है ज्ञान चित मेरे भाई । बिचली दशा न जा भरमाई ।।
सच्ची तुरिया यहां मिले, तुरियातीत परख ।
दोनों की गम गुफा में, मन में अपने निरख ।।
चल आगे को मर्द फकीर । सतपद सतगुरू पद ले धरि ।।
बीन की धुन जहां प्रगटी सतसत। सन्तत पुरूष का दरस परस तत ।।
यहां नहीं देह न गेह न माया । यहां नहीं सूरज चांद न छाया ।।
एक सत्त का भान फकीरा। अलख अगम चल गहिर गंभीरा ।।
राधास्वामी अचल मुकाम । यहां मिले सांचा विश्राम ।।
भेद बताया मूल यह, संत मते का सार ।
सत संगत अभ्यास बिन, समझ बूझ से पार ।।
शब्द जोग को साध कर, सुन संगत के बैन ।
तब समझेगा तत्व को तत्व भेद है सैन ।।
सैन बैन को जो लखे, सोई संत फकीर ।
राधास्वामी की दया, नहिं व्यापै भव पीर ।।

सबसे पहले हम देह में लुटे हुये हैं. हम देह में रहते हैं इस कारण इस स्थूल देह को 'आपा' समझते हैं. यह देह क्या है? यह स्थूल प्रकृति (मादा) से बना हुआ है. अगर तुम लुटना या लुटवाना नहीं चाहते हो तो इस स्थूल देह से परे हो जाओ. जब तक तुम इस देह से परे नहीं हो जाओगे यह लूट समाप्त नहीं हो सकती. तुम देहधारी हो. तुमको भूख प्याह, गर्मी सर्दी लगेगी. अगर और कुछ नहीं लूटते तो पेट भरने के लिये देह की रक्षा करने के जो कार्य करोगे इसमें किसी के कुछ देने और कुछ लेने के लिये विवश होगे. उससे छुटकारा पाने का जो उपाय दाता दयाल ने बताया था वह यह है क भ्रूमध्य (दोनों आँखों के बीच भौओं के ऊपर) जिसको सहसदल कँवल भी कहते हैं ध्यास धरो. जब इससे निकलोगे पहले तुमको दो प्रकार के शब्द सुनाई देंगे जो घंटा व शंख के होंगे. वह दोनों शब्द क्या हैं? सहस दल कंवल में तुम्हारे स्थूह देह की प्रकृति जब एकत्रित होती है तो जैसे इस संसार में तुम धातुओं को एकत्रित करके घंटा बना कर इस पर मारते हो तो शब्द सुनाई देता है वैसे ही जब तुम्हारे अन्तर में सहसदलकँवल पर वृत्ति इकट्ठी होती है तो घंटा व शंख की धुनि सुनाई देती है. यह अनेक का स्थान है. तुम्हारे शरीर की बनावट सूरज, चांद सितारे आदि करते हैं. इनकी किरणें भोजन के रूप में तुम्हारे देह पर प्रभावित होती हैं. इनके आधार पर ज्योतिषी ग्रहों के

विचार से किसी के बारे में भविष्य वाणी करते हैं. जो कोई जिस ग्रह में जन्म लेता है वह उसके प्रभाव से कभी नहीं बच सका.

नौनिधि राय अलीगढ निवासी ज्योतिषी थे. वह दाता दयाल के सेवक थे. उन्होंने दातादयाल से कहा कि महाराज आप पर राहू की दशा आ गई है आपका सारा कारोबार फेल हो जायेगा. यह विराट पुरुष इतना शक्तिशाली है कि उसके प्रभाव से कोई जीव जन्तु, पीर, पैगम्बर, औलिया और औतार नहीं बच सकते. इस विराट पुरुष का प्रभाव हमारे द्वारा इन लोगों पर भी पड़ता है जो हमसे संबंध रखते हैं. हमारी बहू के लड़का पैदा हुआ. ज्योतिषी से उसका टेवा बनवाया. उसने कहा वह अपनी दादी को समाप्त कर देगा. ढाई महीने के भीतर मेरी स्त्री चल बसी. जो मनुष्य इस विराट पुरुष को अपना इष्ट बनाकर इसी को सब कुछ मान लेते हैं, वह इस लूट से कदापि नहीं बच सकते. दाता दयाल का शरीर छूट गया. राम कृष्ण, नानक इत्यादि की जन्म कुंडली बनी हुई है. जिसका संबंध विराट पुरुष से है वह लोग नहीं बच सके. संसार में जितना परिवर्तन होता है जैसे स्वाराज्य का होना, पाकिस्तान का बनना यह सब कार्य विराट पुरुष के अधीन हैं.

जिन वस्तुओं को तुम अपनी आँख से देख सकते हो. वह सब परिवर्तन से नहीं बच सकती. इसी कारण सन्त लोग परम आनन्द की प्राप्ति के लिये ज्योति निरंजन या विराट पुरुष का इष्ट किसी को धारण नहीं कराते हैं. इस विराट पुरुष की ज्योति का अंश तुम में व्यापक है. अगर उसको अपना इष्ट बनाओगे और इसी को सब कुछ समझते रहोगे तो दुख-सुख से नहीं बच सकते. वह देखो मोहनलाल का भाई क्यों बीमार पड़ा हुआ है?

यह उस पर विराट पुरुष का प्रभाव है. उसने ऐसी ही रचना की है. इस वजह से सन्तों ने जीवों की सुरत को इस काल व माया से हटाकर परमतत्व सर्वाधार की ओर आकर्षित कराया है ताकि उनका आवागमन, दुख व सुख सर्वदा के लिये समाप्त हो जाये. तुम लोग शब्द अभ्यास करते हो. सारा जीवन इसी घंटा-शंख की आवाज़ सुनने में गँवा देते हो. जब तक तुम इसकी लालसा में लगे रहोगे, तुम आवागवन से नहीं बच सकते. सारा जीवन इसी में व्यतीत मत करो. मेरा जो आशय है उसको प्रगट करने को शब्द नहीं है. वह संकेत से ही समझा जा सकता है. मैं आशा करता हूँ कि प्रकृति जिसने मुझको पैदा किया है समझने वालों को मेरे संकेत के समझने में मदद करेगी. एक स्थान का अभ्यास समाप्त हो जाने पर उसको छोड़ कर दूसरे ऊपर के स्थान में चले जाओ.

तुम्हारे अन्तर में गुरु का जो रूप प्रगट होता है उसको गुरु स्वरूप कहते हैं. दरअसल गुरु और सत्गुरु में अन्तर है जिसको तुम सत्गुरु कहते हो वह तुम्हारी सुरत का रूप है. सुबह के सत्संग में मैंने दाता दयाल के शब्द से प्रमाण दे दिया कि सत्गुरु सुरत का रूप है.

त्रिकुटी में तुम्हारे अंतर जो गुरु का रूप प्रगट होता है वह तुम्हारा मन है. मैं तुमको अपने अधीन नहीं रखना चाहता. मैं तुमको स्वतन्त्र करना चाहता हूँ. चूंकि तुम लुटे हुये हो इस वजह से मेरे आशय को ग्रहण करने में असमर्थ हो.

तुम्हारे मन के सूक्ष्म विचार जब एकत्रित होते हैं वैसा हो रूप धारण करते हैं. तुम समझते हो यह बाबा फकीर चन्द है और होशियारपुर में रहत है. यह बात असत्य है. वह तुम्हारे मन की एकाग्र अवस्था है. अगर मैं इसको साफ-साफ न कहूँ तो तुम सारे जीवन लुटते रहोगे. मेरे कथन का समर्थन दाता दयाल के शब्द से होता है.

शब्द

यह मन समझन योग साधो ।
मन ही ज्ञान और मन ही ध्यान है, मन ही मोक्ष और भोग ।
मन में वेद को पढ़ते ब्रह्मा, शंकर करते जोग ।। यह मन .....
मन ही अन्दर सृष्टि व्यापी मन ही में है रोग ।। यह मन .....
मन गोविन्द मन गोरख रूपा, मन ही योग वियोग ।। यह मन .....
मन ही पानी मन हो अगिन है मन ही आनन्द, सोग ।। यह मन .....
मन ही गुरू है मन ही चेला, मन ही ब्रह्म संजोग ।। यह मन .....
मन ही का व्यवहार जगत में नाहीं जानें लोग ।। यह मन .....

तुम इस शब्द को नहीं समझ सकते क्यों कि तुमको लुटने में स्वाद आता है. मैं तुम्हारे कल्याण के लिये साफ कह रहा हूँ. जिनका संबंध मेरे साथ है उनको कहता हूँ कि तुम्हारे अंतर में जो मेरा रूप प्रगट होता है उसे फकीरचन्द, पुत्र मस्तराम साकिन होशियारपुर मत समझो. अगर ऐसा समझोगे तो मर कर होशियारपुर में जन्म लोगे. और तुम्हारा आवागवन समाप्त नहीं होगा. अगर मैं ऐसा नहीं कहता तो तुमको धोखा देता हूँ. तुमको लूटता हूँ. मैं दुनिया में तुम लोगों को लूटने नहीं आया हूँ. दाता दयाल ने मुझको समझा था और मुझको पहचाना था. अगर वह मुझको नहीं पहचाने होते तो वह अपनी लेखनी से मेरे लिये क्यों लिखते 'तेरी उत्तम देही' और 'भवनिधि तारन' की पदवी मुझको क्यों देते? उन्होंने औरों को ऐसा क्यों नहीं कहा. मुझको यही काम करना था मगर जिसको लूटना या लुटवाना ही पसंद है वह लुटे और लुटवाये. मैं जीवों के कल्याण के लिये प्रगट हुआ हूँ. अगर मैं स्वयं मुक्त नहीं हूँ तो तुम लोगों को कैसे मुक्त कर सकता हूँ. चूंकि मैं संत सत्गुरु हूँ मैं तुम लोगों को गुरु के देश ले जाना चाहता हूँ. आज तुम मेरी बात न समझने के कारण सच न मानोगे मगर मेरी बात दिल में रखो. कभी न कभी समझ जाओगे और सच मानकर अपना कल्याण करोगे. सच्ची बात का प्रभाव होता है.

मैंने तुमको विश्वास दिला दिया कि जो रूप तुम अपने अंतर बनाते हो वह तुम्हारा मानसिक रूप है. तुम्हारा मन गुरु रूप है और तुम्हारी सुरत सत्गुरु रूप है. जब तुम अंतिम अवस्था पर पहुँच जाओगे तो इस समय जो हमारी बात तुम सुन रहे हो वह बात तुमको विवश करेगी कि तुम निज स्वरूप में ठहरो.

जो रूप तुममें प्रगट होता है उसमें लय होने की अवस्था का नाम सुन्न है. पुरुष और स्त्री का प्रेम काम का विषय है. यह प्रेम अध्यात्मिक विषय है. जो व्यक्ति मन से प्रेम किये हुये गुरु से प्रेम करते-करते उसके रूप में लय हो जायेगा उसकी वही हालत होगी जो एक कामी पुरुष की हालत स्त्री भोग करने के बाद होती है. जब तुम ऐसा कर लोगे तब तुम्हारे मन में शांति आवेगी. ऐसी ही गुरु रूप का प्रेम हमेशा नहीं रहना चाहिए. हमेशा उनका रहता है जो हिर्सी हो जाते हैं. जिस प्रकार एक बूढ़ा आदमी जिसमें काम भोगने की शक्ति नहीं है मगर फिर भी काम भोगना चाहता है, वैसे ही यह सत्संगी जिसने अपने अन्तर गुरु रूप प्रगट कर लिया है, मनानन्द के लिये हिर्स करता है. जो सत्संगी निज घर जाना चाहते हैं वह मन के चक्कर से निकल कर सत्गुरु के रूप में ठहरने की कोशिश करें.

मैं यह बातें किसी निजी स्वार्थवश नहीं कह रहा हूँ. अगर कोई निजी स्वार्थ होता तो ऐसी बात नहीं कहता, बल्कि यह कहता कि मुझे फूल-हार भेंट चढ़ाते रहो और मेरी परिक्रमा करते रहो. भाइयो, मानुष तन दुर्लभ है बड़े भाग्य से मिलता है इसका सम्मान करो.

त्रिकुटी का स्थान क्या है? वह तुम्हारे मन के ठहरने का स्थान है. अपने मन को त्रिकुटी में ठहराओ. गुरु कौन है? तुम्हारा अपना भाव, श्रद्धा और विश्वास. लाल रंग क्या है? तुम्हारे अणु हैं. जितनी मात्रा में तुम्हारी श्रद्धा है उतनी मात्रा में तुम्हारे चित्त की वृति एकाग्र होगी और उतनी मात्रा में तुम्हारी अभिलाषा पूरी होगी. यदि मैं साफ बात नहीं कहता तो क्या मैं तुमको धोखा नहीं देता? तुम्हारा भोग, रोग और ब्रह्म संयोग जो कुछ भी है तुम्हारे मन का व्यवहार है. दाता दयाल की इस शिक्षा से मैं निर्बन्ध हो गया. जो व्यक्ति मेरा दर्शन करेगा, मेरी बात सुनेगा और मेरा ध्यान करेगा वह निर्बन्ध हो जायेगा, क्योंकि (Law of Radiation) संस्कार के नियमानुसार जो व्यक्ति जैसा होता है उससे वैसी धार निकलती है. जो उसको ग्रहण करता है वह वैसा हो जाता है. अतः जब कोई दुखी मेरे पास अपने दुख का प्रश्न लेकर आता है तो मैं कह देता हूँ कि जाओ मेरा ध्यान करो. उनको मेरे ध्यान से लाभ होता है और दुख दूर हो जाता है. जो कोई किसी निर्बन्ध पुरुष का दर्शन करेगा, उसका वचन सुनेगा तथा उसका ध्यान करेगा वह निर्बन्ध हो जायेगा और शान्ति प्राप्त कर लेगा. जैसे एक कामी पुरुष को किसी सुन्दर स्त्री के देखने से काम उत्पन्न हो जाता है वैसे ही एक मुक्त पुरुष के दरस, परस और ध्यान से तुममें वह अवस्था आ जायगी. जब प्रकृति ने मुझको ऐसा पैदा ही किया है तो मैं इस बात के कहने में कि मैं 'वक्त गुरु' हूँ शर्म, संकोच या भय क्यों करूँ. मेरा सत्संग करके मेरी बात की परीक्षा करो, समझो. अगर असत्य हो तो मेरी शिकायत करो. मैंने

जो कुछ कहा है वह प्रकृति के नियमानुसार कहा है. अगर भारत वर्ष में 15-20 व्यक्ति भी मेरे जैसे निर्बन्ध पैदा हो जाएँ तो यह स्वर्ग हो जाय. मैं समझता हूँ कि मेरे ऐसा कहने से दुनिया के लोग मुझको या तो मतिभ्रम वाला या अहंकारी समझेंगे मगर चूंकि ऐसी बात नहीं है मैं ऐसा कहने को बेबस हूँ.

इश्क में तेरे कोहे गम, सर पर लिया जो हो सो हो.

दाता दयाल ने मुझको यह काम सौंपा है. अगर इसे नहीं करता हूँ तो उनकी आज्ञा का उल्लंघन होता है और उनका लक्ष कायम नहीं रहता. मैं इसके बदले में किसी से कुछ माँगता नहीं हूँ. कबीर साहब ने कहा है---

मर जाऊँ माँगू नहीं, अपने तन के काज ।
परमार्थ के कारणे, मोहि न आवत लाज ।।

मैं कहता हूँ-

मर जाऊँ माँगू नहीं, अपने तन के काज ।
परमार्थ के कारणे भी, मोको आवे लाज ।।

मैंने यह बात दाता दयाल की शिक्षा से समझी है. मेरे ग्रह ही ऐसे हैं. उनके प्रभाव से ऐसा कह रहा हूँ. मैं ऐसा बनाया ही गया हूँ. इसमें मेरी कोई बड़ाई नहीं है. संत, बादशाह तथा डाकू और हर एक व्यक्ति जिसको तुम जिस परिस्थिति में देख रहे हो वह वैसा बनाया ही गया है. तुम लाख प्रयत्न करो वह बदल नहीं सकता है.

अगर तुम अभ्यास करते हो तो करो, यह अच्छी बात है मगर सारी उम्र इसी में मत फँसे रहो. एक ही स्थान पर मत अटके रहो. स्थान बदलते चलो, जब तक कि 'मैं पना' समाप्त न हो जाये और आखिरी मंजिल पर न पहुँच जाओ. याद रखो जिन लोगों में संसारी वासना बाकी है वह वहाँ नहीं जा सकते हैं. उस वासना का समाप्त होना भी कुछ मौज के अधीन है.

कुछ करनी, कुछ करम गति, कछुक पूरबले लेख ।
देखो भाग कबीर का, लख से भया अलेख ।।

हविस मत करो. तड़पो मत. मालिक की मौजाधीन रहो. सत्संत में अपने आदर्श को समझलो जो कि आदि अनादि, जुगादि और अनाम है. गुरु के पीछे-पीछे मत फिरो और लुट मत जाओ.

मैं सत्संग करा चला हूँ. अगर दाता दयाल का यह वाक्य सत्य है कि मैं 'भवनिधि तारन' हूँ तो यह असम्भव है कि जो व्यक्ति मेरा सत्संग करे और मेरे कहने पर चले वह भव से तर

न जाय. अगर ऐसा नहीं होता तो दाता दयाल का वाक्य असत्य होगा. मैंने अपना कर्तव्य सत्यता पूर्वक निबाहा. दाता दयाल का जीवन क्रियात्मक था. उनकी शिक्षा पर ध्यान दो. यह उपदेश दे गये हैं-

आस आस जीव बँधे, आस जम की फाँसी ।।
आस से बने निरास बने, चित से उदास बने ।
दुविधि साँस साँस बने जग कराई हाँसी ।।१।।
कोई चाहै धन का दान, कोई माँगे मन का मान ।
कोई ज्ञान कोई ध्यान, अपना रूप नासी ।।२।।
बंधन फँस मुक्ति माँगे, जोग जतन जुक्ति माँगे ।
भक्ति सिद्धि शक्ति माँगे, परम तत्व नासी ।।३।।
कोई भजे त्रिपुरार, कोई कृष्ण से पियार ।
कोई बुद्ध का बिहार, बसे पुरी काशी ।।४।।
लखे नाहिं अपना रूप, पड़े भाव के द्वन्द कूप ।
सो नहीं प्रजा न भूप, माया विश्वासी ।।५।।
खोल कहूँ मानें नाहँ, झगड़ा करे गहि के बाँह ।
नहीं ले गुरु पद की छाँह, मीन जल में प्यासी ।।६।।
राधास्वामी निज स्वरूप, अद्भुत अचरज अनूप ।
गोता मार तन के कूप, हो जा सुख रासी ।।७।।

मुझमें आस थी क्योंकि मुझको सत्यता का ज्ञान नहीं था, भ्रम था. उस मालिक को मैं दाता दयाल के रूप में समझता था. बावला कहलाया, दिवाना बना, क्योंकि मुझे अपने रूप का ज्ञान नहीं था. मैंने उस मालिक से दातादयाल के रूप में प्रेम किया. धाम पर आता था. यहाँ के पेडों और खेत की फसलों को चूमता था. इसमें आनन्द लेता था. ऐसा क्यों करता था? क्यों कि मैं लुटा हुआ था.

स्त्रियों में भी वैसा ही प्रेम होता है जैसा मुझमें था. मुझमें भी सुरत है, स्त्रियों में भी सुरत है. प्रत्येक व्यक्ति में यह जज़्बा होता है. इसलिये मैं आदेश देता हूँ कि कोई स्त्री किसी महात्मा के पैर न छुये. इसका फल अच्छा नहीं होता. इससे काम पैदा होता है. मैं स्त्रियों को अधूरे महात्माओं का शिष्य बना कर दुराचारी बनना नहीं चाहता.

नारी निरख न देखिये, निरख न कीजै दौड़ ।
देखत ही ते विष चढ़े, मन उपजे कछु और ।।

इसलिये पहला स्थान (Stage) समाप्त करने के लिये मैंने स्त्रियों का आचार्य स्त्रियों ही को बनाया है. मैं प्रेम की कदर करता हूँ. मैंने स्वयं ऐसा किया है मगर यह अज्ञान है. इस ग़लत गुरु प्रथा से स्त्रियाँ बदनाम और बरबाद हैं.

अगर कोई आदमी मेरा मान 'सत ज्ञान दाता' समझ कर करता है तो वह ठीक है. मैं ज्ञान तथा निर्वाण का देने वाला हूँ, यह बात सत्य है. इस दृष्टिकोण से मैं इतनी प्रतिष्ठा का अधिकारी हूँ मगर इससे अधिक मेरा और कोई महत्व नहीं है.

जिन लोगों को तुम महात्मा समझते हो वह सन्त नहीं हैं. हाँ, वह गुरुमुख, परमहंस तथा साधु हो सकते हैं. जीवों को दिलासा देने के लिये उनके हित के लिये वह जो कुछ कहते हैं वह ज़रूरी है. उसके अनुसार काम करने में कोई दोष नहीं है. मेरे पास भी दुखी लोग आते हैं. जो मेरी बात को नहीं समझ सकते, उनसे उत्साह की बात कह कर उनको सहारा देता हूँ मगर इसका यह मतलब नहीं है कि मेरे सहारा देने से वह धुर-धाम पहुँच जायेंगे. मेरा काम सहारा देना नहीं है मेरा काम तो सीधे गुरु के देश ले जाना है क्योंकि वह मेरा प्रारब्ध कर्म होने से मेरा कर्तव्य हो गया है.

सहसदल कँवल से लेकर भँवर गुफा तक पाँच स्थान हैं. सहसदल कँवल में अनेकवाद, त्रिकुटी में त्रयवाद और सुन्न में द्वैतवाद है. यह सब स्थान तुम्हारे मन के बोध-भान के खेल हैं. जब तक जीवन है इनका प्रभाव तुम पर अवश्य होगा. इन प्रभावों में न फँसो. मेरे रूप का तुम्हारे अंदर प्रगट होना तुम्हारे श्रद्धा और विश्वास का फल है. मैं तुम्हारे अन्दर प्रगट हो गया. तुमने मुझको अपने से पृथक समझ कर अपना धन-माल मुझको दे दिया. तुम लुट गये या नहीं? अगर तुम मन से नहीं निकल सकते तो दुनिया की आशा रखो और खूब रखो मगर इतना समझ लो कि यह सब तुम्हारे मन के खेल हैं. तुम पृथक हो, तुम्हारा अपना घर कोई और है. दूसरी तरह यह समझो कि तुमको यह सब यहीं छोड़ कर चले जाना है. इसलिये अपना इष्ट उसको बनाओ जो त्रिगुणात्मक जगत से परे है. सत्संग में इस रहस्य को समझो. अन्त समय उसको याद करो जो सबका आधार है और कूटस्थ है.

तुम्हारे अभ्यास में जो कुछ दृष्टिगोचर होता है वह सब तुम्हारे मन का खेल है. जब मन के इस खेल से जी भर जाता है तब सतपद की बारी आती है. तुम्हारी आत्मा सत, चित्त और आनन्द है. जो शिक्षा दाता दयाल ने मुझको दी है वह इन तीनों से परे है. उन्होंने गुरु रूप निम्न शब्द में वर्णन किया है-

सत्संग दो प्रकार का होता है. एक को आम सत्संग (General Satsang) और दूसरे को व्यक्तिगत सत्संग (Private Satsang) कहते हैं. प्रत्येक व्यक्ति के लिये अलग-अलग आदेश उसकी प्रकृति के अनुसार होता है.

गुरु रूप न समझे कोय, भरम में पड़े अज्ञानी ।।
गुरु को मानुष जान कर, भक्ति का करें व्यवहार ।
सो प्रानी अति मूढ़ है, कैसे जांय भव पार ।।
देह के बने अभिमानी ।।
गुरू को मानुष जान कर, सीत प्रसादी ले ।
सो तो पशु समान हैं, संशय में अटके ।।
गुरू तत्व न जानी ।।
गुरू को मानुष जान कर, मानुष करे विचार ।
सो नर मूढ़ गंवार है, भूल रहा संसार ।।
मोह के फाँस फँसानी ।।
गुरू को मानुष जान कर, भेड़ की चलते चाल ।
वह बन्धन को क्यों तजे, व्यापे माया काल ।।
पड़े योनि की खानी ।।
गुरू नाम आदर्श का, गुरू है मन का इष्ट ।
इष्ट आदर्श को ना लखे, समझो उसे कनिष्ट ।।
बात बूझे मन मानी ।।
गुरू भाव घट में रहे, अघट सुघट की खान ।।
जिसे समझ ऐसी नहीं, यह है मूढ़ महान ।।
नहिं गुरू रूप पिछानी ।।
चेला तो चित में रहे, गुरू चित के आकास ।।
अपने में दोनों लखे, वही गुरू का दास ।।
रहे गुरू पद घट ठानी ।।
सुरत शिष्य गुरू शब्द है, शब्द गुरू का रूप ।।
शब्द गुरू की परख बिन, डूबे भरम के कूप ।।
नर जन्म गँवानी ।।
गुरू ज्ञान का तत्व है, गुरू ज्ञान का सार ।
गुरू मत गुरू गम को लखे, फिर नहीं भव भय भार ।।
कमल जैसी गति आनी ।।
राधास्वामी सतगुरू संत ने, कही बात समझाय ।
जो नहीं माने वचन को, उरझ उरझ उरझाय ।।
कौन समझे यह वाणी ।।

मैं दावे के साथ कहता हूँ कि जो राधास्वामी मत का प्रचार कर रहे हैं अधिकांश उनको इस मत की हवा भी नहीं लगी है. मैं यह वास्तविकता उन लोगों के कल्याण के लिये प्रगट कर

रहा हूँ जो मुझसे आशा रखते हैं ताकि उनका जीवन नष्ट न हो. मैं समझता हूँ कि जिस विषय पर मैं बात कर रहा हूँ उसके समझने के अधिकारी बहुत कम लोग हैं लेकिन दूसरों को जब तक वास्तविकता के रहस्य का ज्ञान नहीं होगा तब तक उनको अधिकार कैसे प्राप्त होगा.

गुरू पद

शब्द

जो गुरू के पद को प्राप्त हुआ ।
दुख जीते जी उसका समाप्त हुआ ।।
दुचिता न रही दुविधा न रही ।
निश्चिन्त हुआ मन चिन्ता न रही ।।
गुरू सदा हैं उसके रखवारे ।
जब आप पड़ा गुरू के द्वारे ।।
शरनागत की है लाज उन्हें ।
क्यों व्यापे बता दो चिन्ता तुम्हें ।।
गुरू भक्ति करो गुरू चरन गहो ।
गुरू शरन में सच्चे सुख को लहो ।।
ममता त्यागो मद को त्यागो ।
जग नींद से अब उठकर जागो ।।
प्रीतम और प्रेमी नहीं हैं दो ।
क्या प्रेम की समझ नहीं है तुम्हें ।।
जब मैं हुआ फिर गुरू देव नहीं ।
जब गुरू हैं तो मैं नहीं रहा कहीं ।।
कहाँ प्रेम में दो का ठिकाना है ।
जब तक यह नहीं प्रेम बहाना है ।।
गुरू का मैं गुरू का मैं गुरू का ।
क्यों जग का सताने लगा खटका ।।
राधास्वामी ने की है दया भारी ।
दिया प्रेम दान हो हितकारी ।।

मैं अपने जीवन में अध्यात्म के हर एक दर्जे (स्थान) को क्रियात्मक रूप से देखने का इच्छुक था. सत्गुरु से प्रेम बढ़ाया. उनके आदेशानुसार कार्य करता हुआ इस समय जहाँ पहुँचा हूँ वहाँ

न अब सत्गुरु दाता दयाल की याद है और न उस मालिक की याद है. यह मेरा परिणाम हो रहा है. कई बार सचेत होकर सोचता हूँ कि कहीं पथभ्रष्ट या पतित तो नहीं हो गया. मानसिक प्रेम या भक्ति जो मैं पहले करता था अब वह नहीं रही. पूज्य भाई नन्दू जी से भेंट हुई. उनसे अपना हाल सुनाया. सत कबीर के शब्दों से मुझे इस दात का प्रमाण मिल गया कि जिस अवस्था में मैं हूँ वह ही होना चाहिए. पथभ्रष्ट अथवा पतित नहीं हुआ हूँ. यह अवस्था गुरु व नाम की भक्ति से प्राप्त होती है. दाता दयाल ने आशीर्वाद का जो शब्द 'फकीरा जा भव सागर पारा' लिखा है उसमें आदेश दिया है-

गुरू से प्रेम बढ़ाया तू ने, गुरू चेला व्यवहारा ।
गुरू चेला मिल एक भये जब, एक का मिला सहारा ।।
कट गई काल कर्म की फाँसी, जन्म जुआ नहीं हारा ।
राधास्वामी की बलिहारी, रहे फकीर सुखारा ।।

इस निज अनुभव के प्राप्त होने के बाद मुझको विश्वास हो गया कि दाता दयाल का शब्द 'जो गुरू के पद को प्राप्त हुआ, दुख जीते जी उसका समाप्त हुआ' सत्य है. आप लोग सत्संगी है. सुमिरन, ध्यान और भजन करते हैं. अपने अंतःकरण में अपने जीवन पर विचार करो कि क्या तुमको चिंता, दुख और अशान्ति नहीं है. यदि घरेलू रूप से ऐसा नहीं है तो क्या तुमको अपने इष्ट की प्राप्ति में प्रेम, बिरह और तड़प नहीं सताती? क्या आवागवन से बचने, मालिक से मिलने की चिन्ता नहीं? क्या प्रेमवश तुम रोते नहीं हो? यद्यपि इस रोने में आनन्द है मगर परमसुख या शान्ति नहीं है. जिस अवस्था में मनुष्य की यह सब बातें समाप्त हो जाती हैं वह अवस्था 'गुरुपद' है. इसको छोड़ कर और जितनी अवस्थाएँ हैं वह शारीरिक मानसिक तथा आत्मिक खेल हैं. वह दुख, चिंता और अशांति में बदलता रहता है.

इसकी औषधि या गुरुपद की प्राप्ति का क्या उपाय है? इसका उपाय यह है कि अपने प्रेम को बढ़ाते चलो. देखो, जब किसी का कोई प्यारा मर जाता है या कोई घाटा आ जाता है तो अफसोस करता है, रोता है. जब वह अफ़सोस करने और रोने का अन्त कर देता है, तब उसको मानसिक बेहोशी आ जाती है. उसी तरह प्रेम की लगन में जो प्रेम का अंत कर देता है उसका काम बन जाता है अर्थात मानसिक अवस्था में शान्ति आ जाती है.

मैंने प्रेम करने का अन्त कर दिया. दाता दयाल की संगमरमर की मूर्ति रेल द्वारा जयपुर से मँगवाई. उसका बीमा कराया था. जब बीमा छुड़ाने गया तो देखा कि लकड़ी का बक्स जिसमें मूर्ति बन्द है टूटा हुआ है. मुझको दाता दयाल की मूर्ति टूटने का संदेह हो गया. रेलवे कर्मचारियों से उस बक्स को खोलकर दिखाने को कहा. जब बक्सा खोला गया तो देखा कि मूर्ति का सर नीचे और धड़ ऊपर है. मैं अपने को संभाल न सका और विलख कर रोने लगा, क्योंकि मुझे दाता दयाल से प्रेम था.

अतः अगर तुम असली व सच्चे गुरु पद को प्राप्त करना चाहते हो तो तुमको चाहिये कि प्रेम का अंत कर दो. तब तुमको शान्ति मिलेगी. जब तक कर्म, विचार और प्रेम का अंत न कर दोगे तब तक गुरु पद जिसको मैंने अनुभव किया है, तुमको प्राप्त नहीं होगा. अगर तुम में स्वयं गुरुपद की प्राप्ति की शक्ति नहीं है तो किसी रहस्य ज्ञाता पुरुष की आज्ञा का पालन करो और अपना जीवन उसके आज्ञा के पालन करने में समर्पण कर दो.

मैंने दाता दयाल से प्रेम भी किया, साधन भी किया और उनकी आज्ञा का पालन भी किया. उनकी आज्ञा का पालन करने से मैंने उस अवस्था को प्राप्त किया जिसको गुरु पद कहते हैं.

रांझा रांझा कँहदी मां, मैं आप ही रांझा होई ।
सुनोरी मेरी सखी सहेलियों, हीर न सदियो कोई ।।

मैं वे उपाय बताता हूँ जिससे तुम्हें घरेलू, सांसारिक, सामाजिक तथा आत्मिक रूप से शान्ति प्राप्त हो. इसी शांति को गुरुपद या इष्टपद कहते हैं. तुम्हारी सुरत जब इस अंतिम अवस्था में पहुँच जाती है तो वहाँ न गुरु रहता है न चेला रहता है, न ज्ञान रहता है, न विचार रहता है. इस गति को प्राप्त करने के लिये मन को घोटना पडता है. स्वामी जी ने कहा हैः- 'मन घोटो घट में भाई।'

इसके बाद अन्तिम अवस्था आती है जिसको राधास्वामी दयाल ने अपने बारह मासा में जेठ मास के आधार पर लिखा है. तुममें से कौन ऐसा है जो सच-सच कह सकता है कि उसको किसी न किसी समय दुख तथा चिन्ता नहीं व्यापते हैं. प्रेम, भक्ति व कर्म एक प्रकार का दुख ही तो है. जब तक तुमको किसी प्रकार की इच्छा है तब तक शान्ति कहाँ है. हाँ, आनन्द मिल सकता है मगर वह स्थाई नहीं होता. अतः जब तक तुमको किसी वस्तु की चाह है तब तक तुम गुरुपद के अधिकारी नहीं हो. जब तक किसी वस्तु की चाह है तुम इस अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकते हो.

गुरुपद के प्राप्त करने का एक ही रास्ता नहीं है. बाहरी पूर्ण पुरुष जो स्वयं गुरुपद का वासी है वह तुमको तुम्हारी प्रकृति के अनुसार अलग-अलग मार्ग बतायेगा. इसका नाम गुरुमत है.

मैंने प्रेम का अंत करके गुरुपद प्राप्त किया है. मेरे दीन व दुनिया दोनों बन गये हैं.

स्त्री धर्म

स्त्री अपने पति से प्रेम करके परम पद पर पहुँच सकती है. दाता दयाल कभी-किसी सोहागिन स्त्री को स्वयं नामदान नहीं देते थे. उनके पतियों द्वारा नामदान दिलाते थे. हाँ विधवा स्त्री

को स्वयं नामदान देते थे. नाम की प्राप्ति की अवस्था में तुम्हारी सुरत का प्रेम करते-करते बेसुध हो जाना है. यह विरलों को प्राप्त होती है मगर जब तक तुम्हारा मन प्रेम करते-करते बेसुध नहीं हो जायेगा तब तक तुमको शांति नहीं मिलेगी. इस बेसुधी को चाहे कर्म से प्राप्त करो अथवा विचार से प्राप्त करो. जब बेसुधी प्राप्त हो जायेगी तब समाधि लगेगी. उसके बाद तुम संतमत की शिक्षा के अधिकारी होगे. इस वास्ते कहा गया है कि संतों का मार्ग दसवें द्वार से आरम्भ होता है. दसवां द्वार, महासुन्न तथा निर्विकल्प समाधि एक ही बात है. जब तक तुम निष्काम कर्म, निष्काम ज्ञान, निष्काम विचार और निष्काम प्रेम नहीं करोगे तब तक दसवें द्वार तक नहीं पहुँच सकते. दसवें द्वार पर पहुँचने के बाद चैतन्यता के ज्ञान की बारी आती है. जब तक पहली कक्षा की परीक्षा में पास नहीं होगे दूसरी कक्षा में प्रवेश नहीं कर सकते. अतः तुम पतिव्रत धर्म पालन करो. घर में प्रेमपूर्वक रहो. शान्ति बनाये रखो. कटु वचन मत बोलो. फिजूल खर्च मत करो. सिवाय अपने पति के दूसरे का पाँव मत छुओ.

शब्द (पत्नी-पतिव्रत धर्म निबाह)

अपने पति की प्यारनी, जग की प्यारी होय ।
जो पति को प्यारी नहीं, दुख ग्रस्त रहे सोय ।।१।।
पतिनी तो पति की बानी, और का हिय में ध्यान ।
ताको इस संसार में, जीवन नर्क निदान ।।२।।
पति बल अबला बली हो, पति सुख से सुख रूप।
प्रेम पती का चित बसे, क्यों पड़े दुख के कूप ।।३।।
एक तत्व के रूप दो, पति पतिनी के भाव।
मिल जुल खेलें जगत में, पाय प्रतीत प्रभाव ।।४।।
प्रीतम पति का अंग है, प्रेमी पतनी भेस।
अन्तर बाहर प्रेम रंग, प्यार प्रीति के देस ।।५।।
पतिव्रता के एक है, कुटिला के दो चार।
कुटिला नरकी जीव है, पतिव्रता वर नार।।६।।
संत पंथ में आय कर, चल तू प्रीति की राह।
प्रेम की दृढ़ता मन रहे, राधास्वामी हाथ निवाह।।७।।

जो संबंध पत्नी का अपने पति से है वही संबंध शिष्य का अपने गुरु से है. मैं वह व्यक्ति हूँ जिसने अपना जीवन एक सच्चे शिष्य की हैसियत में एक सच्चे गुरु के साथ व्यतीत

किया है. इसमें जो अनुभव मुझको प्राप्त हुआ है उसको ज्यों-का-त्यों संसार की भलाई के लिये निष्काम भाव से प्रगट कर रहा हूँ.

राधास्वामी मत में असली वस्तु योग है. सुरत और शब्द एक ही वस्तु है. सुरत से शब्द और शब्द से सुरत पैदा होती है. दुनिया के लिये प्रेममार्ग है. तुमको प्रेम करके सुरत को दसवें द्वार ले जाना है यह ज़रूरी नहीं है कि दसवें द्वार तक पहुँचने के लिये तुम गुरु ही का ध्यान करो. महासुन्न तक पतिव्रता स्त्री, प्रत्येक पंथ का सच्चा कर्मयोगी और सच्चे विचार वाला मनुष्य पहुँच सकता है. तुमको प्रेम की हद कर देनी है ताकि महासुन्न तक पहुँच जाओ और निर्विकल्प समाधि में आ जाओ. इसके बाद आत्म आनन्द की अवस्था प्राप्त करने के तीन मार्ग हैं—पहला कर्म योग, दूसरा ज्ञान योग और तीसरा भक्ति योग है. पत्नी अपने पति से सच्चा प्रेम करके वहाँ पहुँच जाती है और एक सूरमा जो रणक्षेत्र में युद्ध करता है वह भी महासुन्न पहुँच जाता है. अभिप्राय तो अपने चित्त की वृत्ति के निरोध से है. जब तक तुम्हारे चित्त की वृत्ति मन की फुरनाओं को छोड़कर निरोध को प्राप्त नहीं कर लेती तब तक तुमको आत्मज्ञान प्राप्त करने का अधिकार नहीं है. रहस्यज्ञाता गुरु जानता है कि तुम्हारे चित्त की वृत्ति किस प्रकार एकाग्र हो सकती है.

कोक शास्त्र में पाँच प्रकार की स्त्रियाँ वर्णन की गई हैं—

(1) पद्मिनी—इसके मुख की कांति कमल के समान खिली होती है. उसके रंग में परिवर्तन नहीं होता. होठ पतले गुलाबी लाल रंग के, आंखें मतवाली. शरीर से एक विशेष प्रकार की सुगन्ध उड़ती है. सदाचारिणी पतिव्रता, अन्य पुरुषों से उदासीन, निर्भय, दिखावे से दूर रहने वाली. इस प्रकार की स्त्री में एक तरह की सूक्ष्मता होती है जो दैवी सृष्टि से संबंधित है. ऐसी स्त्रियाँ सती होती हैं जो पुरुष शव के साथ प्रसन्नता पूर्वक जल जाती हैं.

(2) चतुरनी—इसका दर्जा पद्मिनी से नीचा है. वह सुंदर तो होती है मगर समय-समय पर उसके मुख की कांति में परिवर्तन हो जाया करता है. होंठ इसके भी पतले होते हैं. यह सुख चैन, वस्त्र, आभूषण इत्र या सुगंधित वस्तुओं की लालसा रखती है. कभी-कभी आंखों में बल डालकर होंठ की कड़क और हाथ की उंगलियों से संकेत करके बातचीत करती है. यह स्वभाव की उसी सीमा तक दृढ़ रहती है जहाँ तक लज्जा और संकोच इसको विवश करते हैं. इसके शरीर से सुगन्ध नहीं निकलती.

(3) शंखिनी—इसका मुख शंख के समान खुला या बन्द होता है और उसी प्रकार की बोली होती है. कभी-कभी अच्छे स्वर की होती है मगर उसमें भारीपन होता है. इसका रूप कभी-कभी अति सूक्ष्म व सुन्दर होता है. इसका मन चंचल होता है और समय-समय पर धर्म-कर्म को धूल के समान भी नहीं समझती. जैसा संग

मिल गया उसी के अनुकूल बन जाती है. इसके बदन से दुर्गन्ध. उड़ती है. इसको गाने-बजाने का बड़ा चाव होता है. यह धोखेबाज़ होती है. माता-पिता के साथ कभी सच्चाई का बर्ताव नहीं करती. इस प्रकार का रूप बनाये रहती है कि वे इसको अबोध बालक समझें. छल-कपट को दोष नहीं समझती है.

(4) हस्तिनी—इसके होठ मोटे होते हैं. बाहरी दृष्टि से अपने को कुछ लज्जा वाली समझती है. भीतरी तौर पर व्यवहार भ्रष्ट और आज्ञा न पालन करने वाली. यह मोटी, पेट निकला हुआ, हाथ, पाँव बेडौल और पति पर प्रबल अंकुश रखने वाली होती है. रुपया, वस्त्र, आभूषण और संसारी वस्तुओं को धर्म से अधिक मानने वाली होती है.

(5) डंकिनी—यह पद्मिनी से बिल्कुल उलटी होती है. जितना उसमें सद्‌गुण है उतना ही उसमें दुर्गुण है.

पद्मिनी का पति तो बादशाह होता है. चतुरनी का पति अधिक सुखी रहता है. शंखिनी के पति को दुख और सुख दोनों होते हैं. हस्तिनी का पति जीवन भर उसका पुजारी, चेला या गुलाम रहता है और डंकिनी का पति पद्मिनी के पति से विपरीत होता है. यही बात सुरत की है.

(1) एक सुरत वह है जो उस मालिक की अपनी ज़ात (अपना स्वरूप) समझकर उसमें मस्त रहती है.

(2) एक वह जो उस मालिक को अपने स्वार्थ या कामना की पूर्ति के लिये उसकी पूजा करती है.

(3) एक वह जो उस मालिक को भय से याद करती है.

(4) एक वह जो उस मालिक को कई रूपों से मानती है.

(5) एक वह जो इन चारों से भिन्न है.

पाँचों प्रकार की स्त्रियों की व्याख्या तुमने सुन ली. स्त्रियाँ अपने लिये सोच लें, पुरुष अपने लिये सोच लें. जब तक यह दर्जे समाप्त नहीं हो जाते, तब तक संतमत की शिक्षा प्रारंभ नहीं होती. ऊँची बातों को प्रवृत्ति मार्ग वाले दुनिया के लोग नहीं समझ सकते हैं. जो कुछ मेरे अनुभव में आया कह चला, क्योंकि यह मेरा प्रण या कर्मभोग था.

अपना धर्म पालो. जब समय आयेगा, संसार के दुख-सुख से चित उपराम हो जायेगा. कोई न कोई मिल जायेगा जो आगे का रास्ता बता देगा. जो लोग गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हैं और केवल शब्द अभ्यास करते हैं, उनकी दुनियावी हालत खराब हो जाती है. तुम्हारी दुनिया तथा गृहस्थ जीवन का संबंध मन से है. पिछली आयु में दाता दयाल केवल शब्द अभ्यास करते थे. इसका परिणाम यह हुआ कि खाना भी ठीक नहीं मिलता था. क्या उनका मार्ग ठीक नहीं था? उनका मार्ग ठीक था. जिस मनुष्य को अपने घर जाना है वह इस दुनिया के

जीवन की परवाह नहीं करता. इसलिये मैं अपने 69 साल के अनुभव को जिसको मैंने राधास्वामी मत की शिक्षा से प्राप्त किया है कर्मभोग वश कहे जाता हूँ कि जो लोग गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हैं वह अपनी आशाओं की पूर्ति के लिये सुमिरन ध्यान अवश्य करें. इससे उनकी संकल्प शक्ति दृढ़ हो जायेगी. शब्द का अभ्यास के खब्त में पड़ कर जो व्यक्ति सुमिरन ध्यान छोड़ देगा उसकी दुनियावी हालत खराब हो जायेगी. यह ठीक है कि वह आत्म आनन्द पा जायेगा मगर हर काम का समय पर होना अच्छा लगता है.

हमारे सत्संग में आकर हमारी बात सुनो और अपनी खोपड़ी में बैठा लो. कोई बाहरी पुरुष तुम्हारा बेड़ा पार नहीं कर सकता. तुम्हारा बेड़ा तुम्हारे कर्म से पार होगा. अपने रक्षक तुम आप हो. वह सत्गुरु तुम्हारा निज स्वरूप है. मैं किसी को अपने जाल में फँसाना नहीं चाहता. मैं किसी को नामदान नहीं देता. नामदान क्यों नहीं देता? क्योंकि मैं समझ गया हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति किसी रूप के साथ सच्चा प्रेम करके लाभ उठा सकता है.

बाबा फरीद ने तप किया. सिद्धि शक्ति प्राप्त हो गई. चिड़ियों को कहा मर जाओ. वह मर गईं. फिर कहा जी जाओ, वह जी गईं. उनको अभिमान हो गया. किसी गृहस्थी के घर भिक्षा माँगने गये. घर की औरत देर से भिक्षा लेकर आई. बाबा फरीद को क्रोध आ गया. औरत को घूर कर देखा. औरत हँसी. कहा कि मैं चिड़िया नहीं हूँ कि मर जाऊँगी. बाबा फरीद को आश्चर्य हुआ. पूछा यह शक्ति तुममें कहाँ से आई? औरत ने उत्तर दिया मैंने यह शक्ति अपने पतिदेव से पाई है. एक स्त्री अपने पति के ध्यान से सिद्धि शक्ति प्राप्त कर सकती है.

मन के जितने खेल हैं वह सब तुमको समाप्त करने होंगे. जिसका यह खेल समाप्त नहीं हुआ वह मेरे पास बैठा रहे उसको सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं होगा क्योंकि उसका दसवाँ द्वार पार नहीं हुआ है.

मैंने दाता दयाल के शुद्ध स्वरूप से फैज़ हासिल किया है अतः उनका कृतज्ञ हूँ.

कामी तेरे, क्रोधी तरे, पापी तरे अनन्त ।
आन उपासक, कृतघन, तरे न नाम रटन्त ।।

तुम सब लोगों को सतपद पहुँचाना, मालिक से मिलाना निज घर पहुँचाना मेरा कर्तव्य. है. इसलिये मेरे आदेश का कबीर साहब के निम्न अंकित शब्द को समझ कर पालन करो.

अब मैं भूला रे भाई, मेरे सतगुरू जुगत लखाई ।।टेक।।
किरिया कर्म अचार मैं छाँडा, छाँडा तीरथ का न्हाना ।
सगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही एक बौराना ।।
ना मैं जानू सेव बन्दगी, ना मैं घन्ट बजाई ।

ना मैं मूरत धरी सिंहासन, ना मैं पुहुप चढ़ाई ।।
जो यह मूरत मुख से बोले, कर असनान न्हवाई ।
पाँच टका हो देत ठठेरे, एक ही हौं लै आई ।।
ना हरि रीझै जप तप कीन्हें, ना काया के जारे ।
ना हरि रीझे धोती झाँडे, ना पाँचों के मारे ।।
दाया राखि धरम को पाले, जग से रहे उदासी ।
अपना सा जीव सबका जाने, ताहि मिले अविनासी ।।
सहे कुशब्द बाद को त्यागे, छोड़े गर्व गुमाना ।
सत्त नाम ताही को मिलि है, कहें कबीर सुजाना ।।

राधास्वामी धाम

दाता दयाल पहले लाहौर में रहते थे. विज्ञानी, अवधूत, संत संदेश इत्यादि पत्रिकाओं को प्रकाशित करते थे और सत्संग कराते थे. उनका काम निष्काम था. वह अपने लिये काम नहीं करते थे बल्कि दूसरों के हित के लिये करते थे. वह कर्म के फल से रहित थे. कई दीन-दुखी व्यक्ति उनके साथ लगे रहते थे. बुढ़ापे में वह उत्साह पूर्वक काम करते रहे.

वह लाहौर छोड़ कर अपने गाँव पर आये. मैंने सोचा कि जीवन के शेष दिन एकान्त वास करने के लिये यहाँ आये हैं. यहाँ पर उन्होंने राधास्वामी धाम, सत्संग धर, धर्मशाला, पाठशाला और स्कूल बनवाये.

मैं सोचता था कि जो मनुष्य परम गति को प्राप्त कर लेता है उसको डेरा-धाम तथा किसी संस्था से काम नहीं रहता क्योंकि इसको कायम रखने के लिये कई बातें स्पष्ट रूप से नहीं कही जा सकती हैं. अतः एक दिन मैंने उनसे एकान्त में पूछा कि जो शिक्षा मैंने आज तक आपसे प्राप्त की है उसके आधार पर क्या मैं कह सकता हूँ कि आपका सत्संग घर आदि बनवाना और सत्संग का झमेला लेना उस शिक्षा के विरुद्ध नहीं है? उन्होंने उत्तर दिया कि क्या करूँ विवश हूँ. जितने गद्दी वाले गुरुमत की शिक्षा का प्रचार कर रहे हैं यह ग़लत तरीके पर प्रचार करते हैं. मैं हजूर महाराज की शिक्षा का यथार्थ प्रचार करना चाहता हूँ. बिना केन्द्र के काम नहीं चल सकता. मैं उनकी बात को समझ गया.

क्या कारण है कि दाता दयाल ने इस स्थान का नाम राधास्वामी धाम रखा? क्या दूसरे स्थानों पर इस मत की शिक्षा का प्रचार नहीं था? मैं कहता हूँ कि यह बात सत्य है कि दूसरे स्थानों पर इसका प्रचार नहीं था क्योंकि दूसरी जगह लोगों ने गुरु के रूप को न समझकर, गुरु को किसी के देह के साथ संबोधित किया है. इसलिये दाता दयाल ने वास्तविक

गुरुमत की शिक्षा के प्रचार के लिये यह केन्द्र स्थापित करना आवश्यक समझा. उन्होंने इस स्थान का वक्फनामा लिखकर ट्रस्ट कायम कर दिया और इसका अधिकार वक्तगुरु को सौंप दिया. उन्होंने प्रचार किया कि तमाम मत एक हैं और तमाम मनुष्य भाई-भाई हैं. उन्होंने कोई बात किसी पंथ के विरुद्ध नहीं कही और सब धर्मों के गुणों को प्रगट किया. गुरु नाम है ज्ञान और अनुभव का. असली गुरु अनहद बानी है. जहाँ कहीं इसके उपकेन्द्र स्थापित होंगे वह सब इस धाम के अन्तर्गत रहेंगे. वह केन्द्र कौन से हैं? जहाँ पर मनुष्यता की शिक्षा का प्रचार है, जहाँ जनता ईश्वर के नाम पर मत भेद नहीं रखती, सबको अपना भाई समझती है, किसी से ईर्ष्या द्वेष घृणा नहीं रखती. उन सब स्थानों को यहाँ से शिक्षा प्राप्त होगी.

गत वर्ष तक मेरी यही भावना थी कि दाता दयाल के चोला छोड़ने के बाद धाम तथा इनकी सम्पत्ति विरासतन राम किशोर सिंह की हो गई. इसमें सत्संगियों का कोई अधिकार नहीं रहा, क्योंकि दाता दयाल के शरीर त्यागने के दूसरे साल बड़े दिन की छुट्टी में मैं उनकी समाधि का दर्शन करने आया और यहाँ सत्संग कराना चाहा तो रामकिशोर सिंह ने मुझको सत्संग कराने से मना कर दिया. मैंने उनके आदेशानुसार दूसरी जगह सत्संग कराया.

मैं दाता दयाल को मनुष्य नहीं समझता था बल्कि उन को परमतत्व सर्वाधार का अवतार मानता था. धाम को केन्द्र बनाने में उन्होंने निजी स्वार्थ नहीं रखा. केवल अपने लक्ष्य के प्रचार के लिये स्थापित किया. उनकी समाधि की मान प्रतिष्ठा मुझको हृदय से थी. इस भावना से कि यह रामकिशोर सिंह की सम्पत्ति हो गई, मैंने उनसे कहा कि इस स्थान का मूल्य ले लेवें और इस स्थान से अपना निजी संबंध न रखें ताकि दाता दयाल के दृष्टिकोण से इसको हराभरा करके उनके लक्ष्य के प्रचार का केन्द्र बनाऊँ परन्तु उन्होंने मेरी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया. यहाँ पर गाय, बकरी चरा करती थीं और स्थान सुरक्षित नहीं था. जिस पुरुष को मैंने परमतत्व सर्वाधार का अवतार माना था उसकी समाधि पर गाय, बकरी को चरता हुआ देखना मैं कब सहन कर सकता था. इसकी देखभाल के लिये मैंने स्वामी प्रयाग लाल को नियुक्त किया परन्तु राम किशोर सिंह का व्यवहार उनके प्रतिकूल रहा. अतः वह स्थान उनको छोड़ देना पडा.

अब मुझको मालूम हुआ है कि दाता दयाल ने राधास्वामी धाम को वक्फ़ करके उसका ट्रस्ट स्थापित करा दिया था जिसका नाम राधास्वामी जनरल सत्संग ट्रस्ट रखा था. और रामकिशार सिंह उसके केवल एक सदस्य हैं. मुझे अफसोस है कि इस बात की जानकारी मुझे इतने दिनों के बाद हुई और अब तक यह बात मुझसे छिपा रखी गई वरना मैंने इस स्थान को आज से बहुत दिन पहले वक्फ़ नाम के दृष्टिकोण से हराभरा कर दिया होता. सम्भव था मैं स्वयं भी यहाँ आबाद हो गया होता परन्तु मालिक की मौज ऐसी नहीं थी.

संत त्रिकाल ज्ञाता होते हैं. वह किसी मनुष्य को देखकर समझ जाते हैं कि यह पहले क्या था. इस समय क्या है और आगे क्या होगा. जिस तरह सूरज की लाली, वायु के चलने और पानी बहने से उनकी स्थिति का पता चलता है वैसे ही हर व्यक्ति के आंतरिक भाव का आकार उसके माथे के चारों तरफ व्यापक रहता है. यह भिन्न-भिन्न रंगों का होता है और इन्द्रधनुष की चमक दमक या घने धुयें की सियाही लिये होता है. संतों को यह दृष्टिगोचर होता है. दूसरे कम देखते हैं. इससे हर व्यक्ति की भावना का पता चल जाता है. गुरु सारी बातें नहीं बताया करते. अपना व्यक्तिगत अनुभव सबसे अधिक काम करता है. दाता दयाल जब हजूर महाराज के सत्संग में गये तो उन्होंने दाता दयाल की आकृति देखकर भविष्यवाणी की कि यह व्यक्ति (Classical Writer) प्रमाणित लेखक होगा और संतमत का प्रचार लेखनी द्वारा करेगा. इस बात का ख्याल दाता दयाल को उस समय कुछ भी नहीं था परन्तु यह बात अक्षरशः सत्य हुई. वैसे ही दाता दयाल ने मेरी आकृति को देखकर मेरे नाम 'परम दयाल' व 'भव निधि तारन' कह कर शब्द लिख दिये जो 'फकीर भजनावली' नामी पुस्तक में है. इन बातों का उस समय मुझको कुछ भी ख्याल नहीं था, परन्तु दाता दयाल ने जैसा लिखा वैसा मुझको होना पड़ा. मेरे प्रालब्ध में यही था और कुबेरनाथ के प्रालब्ध में भी यही है. मैं कुबेरनाथ को राधास्वामी धाम का आचार्य नियुक्त करता हूँ और आशीर्वाद देता हूँ कि यह दाता दयाल की शिक्षा को भली प्रकार प्रचार करे. इसके शिष्य सच्चे राजपूत, शेर, शूरवीर और उत्साही होंगे. ट्रस्ट के प्रबंध का सब अधिकार मैं उसको सौंपता हूँ और आदेश देता हूँ कि वक्फ़नामे के दृष्टिकोण से धाम की सम्पत्ति का सच्चाई से प्रबन्ध करें ताकि दाता दयाल के प्रेमी इस संस्था की हर्षपूर्वक सहायता करें. सत्संगी या प्रेमभाव से जो आवे उसका स्वागत करें. इसका अधिकार सबको है मगर कोई व्यक्ति तुम्हारे प्रबंध में हस्तक्षेप नहीं कर सकता. तुम अपनी नीयत साफ़ रखो. जो तुमसे शत्रुता करेगा वह अपने कर्म से आप मिट जायेगा. सच्चाई का प्रभाव होता है. तुम सबसे प्रेम व मित्रता का व्यवहार रखो. यह स्थान आबाद होकर रहेगा और यहाँ से जनता को शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शान्ति प्राप्त होगी. यहाँ दाता दयाल की समाधि है जो जीवों को देह, मन और आत्मा के बंधन से मुक्त करने वाले थे. उन्होंने सच्ची शिक्षा, सच्चा ज्ञान और सच्चा भाव प्रदान करने के लिये यह धाम स्थापित किया है. जिस प्रकार एक अनबूझ बालक में यह शक्ति नहीं है कि वह झूठ बोल सके, उसी प्रकार एक संत में यह शक्ति नहीं होती कि वह असत्य कह सके. यह कभी मत सोचो कि मैं हेरफेर की बात या कार्य कर सकता हूँ. कुबेर नाथ, ध्यानपूर्वक सुन. तेरे अन्तर दाता दयाल तेरा शब्द स्वरूपी गुरु है. जो काम तुमको सौंपता हूँ उसको सच्चाई से कर. तू इस काम से तर जायेगा.

दाता दयाल ने धाम बनाई. सत्संग कराने लगे. उनकी सुरत इस कार्य में फँस गई. मैंने उनकी दशा निरखी. उनको धाम के कार्य से आजाद करके यहाँ लाया जहाँ उनकी समाधि है. इस मामले में मैंने दाता दयाल के साथ वही काम किया जो गोरख नाथ ने शिष्य के नाते

अपने गुरु मत्स्येंद्रनाथ के साथ किया, जिसकी कथा शाही जादूगरनी नाविल में (जो शिव मासिक पत्र में छप चुकी है) दाता दयाल ने लिखी है और अब भी उनकी आज्ञा से उन्हीं की शिक्षा के प्रचार में निष्काम व निःस्वार्थ भाव से लगा हूँ. जो इस शिक्षा को समझेगा सोचेगा, उस पर चलेगा उसका कल्याण होगा.

प्राणी मात्र को शान्ति मिले.